नई समाजवादी क्रान्ति का उद्घोषक

बिगुल

मासिक समाचार पत्र • वर्ष 3 अंक 8
सितम्बर 2001 • तीन रुपये • बारह पृष्ठ

जनता ने आज सिर्फ गुठलियां फेंकी हैं, कीचड़ उछाला है, कल तख्त उछाले जायेंगे, ताज गिराये जायेंगे।

(सम्पादक)

पिछले पांच सितम्बर को उड़ीसा राज्य के काशीपुर क्षेत्र (जिला रायगढ़) में भूख से लगभग दो दर्जन लोगों की मौत के बाद पहली बार दौरे पर पहुंचे राज्य के मुख्यमंत्री नवीन पटनायक के काफिले पर स्थानीय जनता का गुस्सा फूट पड़ा। क्षेत्र के पांसमुड़ा गांव के लोगों ने मुख्यमंत्री महोदय को आम की गुठलियों का चूरा खाने के लिए प्रस्तुत किया। उधर ठीकरी गांव के गुस्साये लोगों ने गुजर रहे काफिले को गालियां दी और न रुकने पर मुख्यमंत्री की कार पर आम की गुठलियों का पूरा बोरा ही उलट दिया। सैकड़ों लोगों की इस गुस्सायी भीड़ से मुख्यमंत्री की कार तो बचकर निकल गयी, लेकिन लखीमपुर के विधायक विभीषण मांझी जनता के हत्थे चढ़ गये। भीड़ ने उनको ठेला–धकियाया और उनके ऊपर कीचड़ भी उछाला। इस स्वतःस्फूर्त मुहिम में सबसे बढ़–चढ़कर महिलाओं ने हिस्सेदारी की।

लोगों का यह गुस्सा अचानक नहीं फूट पड़ा था। धीरे–धीरे विस्फोट का यह मुकाम आया। पहले तो शासन–प्रशासन तंत्र भुखमरी की स्थिति से ही इनकार करता रहा। फिर स्वीकार करने के बाद भी कोई ठोस उपाय नहीं हुआ। लोग पेट की आग बुझाने के लिए आम की गुठलियां खाने तक मजबूर हुए। मौतों का सिलसिला शुरु होने पर भी अफसरों ने इसे जहरीला भोजन खाने से हुई मौतें बताया। इसके बावजूद भी वे भुखमरी रोकने का कारगर इन्तजाम करने के बजाय अपनी चमड़ी बचाने की फिराक में ज्यादा रहे। सरकारी कवायदों और प्रशासन की इन अमानवीयताओं से उनके अन्दर धीरे–धीरे नफरत और गुस्सा इकट्ठा होता जा रहा था, जो मुख्यमंत्री के दौरे के समय आखिरकार फूट पड़ा।

कालाहांडी और बोलांगीर के बाद काशीपुर उड़ीसा राज्य का तीसरा ऐसा क्षेत्र है जो अकाल और भुखमरी का शिकार है।"आजादी" के 54 वर्षों बाद भी आदिवासी बहुल यह क्षेत्र खेती की बुनियादी सुविधाओं से

शेष पृष्ठ दस पर

सावधान हुक्मरानो! लोगों का गुस्सा बढ़ रहा है!

काशीपुर में भुखमरी के शिकार लोगों का गुस्सा मुख्यमंत्री नवीन पटनायक और अन्य जनप्रतिनिधियों पर जिस तरह फूट पड़ा वह देश के हुक्मरानों को एक चेतावनी है। यह आने वाले कल का एक संकेत है। देश के खाये–अघाये भ्रष्ट–विलासी जनप्रतिनिधियों और मौत की घाटियों में भी रासलीला रचाने वालों की समूची जमात को यह अहसास जरूर हो गया होगा कि पेट की आग दावानल जैसा प्रचण्ड रुप भी ग्रहण कर सकती है।

जब गोदाम अनाजों से भरे हों और पेट खाली, शासन–प्रशासन तंत्र सिर्फ अपनी चमड़ी बचाने में लगा हो और जनप्रतिनिधि थुक्का फजीहत में मशगूल, तो ऐसे में खाली पेट लोगों का गुस्सा तो इसी तरह फूटेगा। गनीमत है कि उन्होंने अभी अनाज के गोदामों पर धावे नहीं बोले, धनिकों के रनिवासों को आग के हवाले नहीं किया। भूख और बेबसी आदमी को निर्मय बना देती है, फिर न कानून का डर रहता है न राजसत्ता की बन्दूकों का। आप चाहे तो इसे अराजकता कह लीजिए, आपका न्यायालय चाहे तो इसे "मानवता के विरुद्ध अपराध" घोषित कर दे लेकिन भूखे–नंगे लोगों को नैतिकता–अनैतिकता और पाप–पुण्य के सांसारिक–आध्यात्मिक प्रतिबन्धों की चौहद्दी बांध नहीं सकती। यूँ तो हमारे यहाँ शास्त्रों में भी कहा गया है–**भुभुक्षितम किम् न करोति पापम्।**

शेष पृष्ठ दस पर

सरकार ने ट्रेड यूनियन एक्ट बदला कोर्ट ने ठेकाकरण को मान्यता दी।

(योगेश पंत)

मजदूरों ने रोजगार की सुरक्षा, नियमितीकरण और संगठित होने के अधिकार लम्बी लड़ाइयों के बाद और अनगिनत कुर्बानियां देकर हासिल किये थे। आज से सारे अधिकार एक–एक कर छीने जा रहे हैं और मजदूरों की विशाल आबादी क्षोभ और हताशा में इसे देखकर रह जा रही है। अपनी संगठित ताकत के दम पर अंग्रेज हुकूमत तक को झुकाकर जो अधिकार हमने हासिल किये थे, आज धन्नासेठों की चाकर सरकार और अदालतें उन्हें हमारे हाथों छीन ले रहीं हैं और मजदूर मुहंतोड़ जवाब भी नहीं दे पा रहे हैं।

भारतीय जनता पार्टी के नेतृत्व वाली राजग सरकार के कान में हमला दिनोदिन साथ–साथ अदालतें भी रोजगार और संगठन के बुनियादी हकों पर डाका मारने में शामिल हो गई है। इसी एक साल में अदालत

शेष पृष्ठ चार पर

भीतर के पन्नों पर

1. फरीदाबाद में पत्रकार को घर से उठाया – पृ. 3
2. अधिकारियों की लूट–खसोट से सुपर बाजार कंगाल – पृ. 4
3. निजीकरण की ओर बढ़ता कोयला उद्योग – पृ. 5
4. मजदूरों के बीच निरन्तर प्रचार कार्य जरुरी – लेनिन – पृ. 8
5. बदबू कहानी – शेखर जोशी – पृ. 9

विकास मुनाफा खोरों का, विनाश मेहनती जनता का-3

देशी-विदेशी पूंजी का खुला खेल फर्रूखाबादी

मुकुल

पहले चरण के व्यापक आर्थिक परिवर्तनों को निर्णायक मंजिल में पहुँचाते हुए, वाजपेयी–सिन्हा एण्ड कम्पनी ने आयात–निर्यात नीति 2001–2002 की घोषणा की। इसके साथ ही सभी 1429 वस्तुओं पर (सन् 2000 में 715, 2001 में 714 वस्तुओं पर) लगे मात्रात्मक प्रतिबन्धों को हटा लिया गया। यह प्रक्रिया गैर समझौते के बाद विश्व व्यापार संगठन का सदस्य बनने के बाद ही शुरु हो गयी थी। 1 अप्रैल 1996 तक भारत ने 6,161 वस्तुओं पर से (संसदीय वामपंथियों से युक्त संयुक्त मोर्चा सरकार के दौर में) तथा 1999 के अन्त तक 2296 अन्य वस्तुओं पर से मात्रात्मक प्रतिबन्ध (यानी 300 प्रतिशत तक के आयात शुल्क को खत्म करना) हटा लिया गया था।

विगत एक अप्रैल को जब आयात–निर्यात नीति की घोषणा की गयी थी तो देश के बाजार में विदेशी मालों की भरमार के "खतरे" से निबटने के लिए

उदारीकरण के दस वर्ष

वाणिज्य मंत्रालय ने 300 संवेदन शील वस्तुओं के आयात पर निगरानी रखने और उनकी समीक्षा के लिए एक 'वार रूम' गठित किया था। डेढ़ महीने के भीतर ही इसका बोरिया–बिस्तर बांध दिया गया। उधर सरकार ने एक अन्य निर्णय द्वारा रक्षा उपक्रमों में 26 प्रतिशत प्रत्यक्ष विदेशी पूंजीनिवेश की अनुमति भी दे दी है।

1991 में नयी उद्योग एवं आर्थिक नीतियों की घोषणा के साथ ही आर्थिक 'सुधारों' का पहला चरण शुरु हुआ था। यह चरण अन्तराष्ट्रीय मुद्राकोष व विश्व बैंक के ढांचागत समायोजन कार्यक्रम के तहत देश की अर्थव्यवस्था में व्यापक परिवर्तनों का चरण था।इस पहले चरण में सभी सरकारों को जोर मुख्यतः इस बात पर था कि देशी निजी एकाधिकारी पूंजी के निवेश के लिए नये–नये क्षेत्र मुहैया कराने की खातिर रास्ते साफ किये जायें। साथ ही अन्तराष्ट्रीय वित्तीय पूंजी के बेरोकटोक आगमन के लिए तमाम अवरोधों (बंदिशों) को हटाया जाय। कुल मिलाकर देश की अर्थव्यवस्था को विश्वअर्थव्यवस्था में मिलाना –"तुलनात्मक फायदे के सिद्धान्त" पर चलना – इस पहले दौर की विशेषता थी।

अब "तुलनात्मक फायदे" का परिणाम देखें। बहुराष्ट्रीय कम्पनियों से भारत को विदेशी मुद्रा की आमदनी नहीं हो रही बल्कि उल्टे यह मुद्रा विदेशों में जा रही है। एक अध्ययन से

शेष पृष्ठ दो पर

बजा बिगुल मेहनतकश जाग, चिंगारी से लगेगी आग !

आपस की बात

रेल मज़दूर आंदोलन को नये सिरे से खड़ा करने के लिये दिशा निर्देश दिये जायें

प्रिय सम्पादक जी,

भारत सरकार ने पिछले दिनों रेलवे के पुनर्गठन के लिए राकेश मोहन कमेटी गठित की थी। राकेश मोहन प्रधानमंत्री के मुख्य आर्थिक सलाहकार हैं। कमेटी ने अपनी रिपोर्ट ओर संस्तुतियां प्रधानमंत्री को सौंप दी है। ये संस्तुतियां निम्नलिखित हैं।

1. रेलवे बोर्ड को समाप्त करके उसकी जगह भारतीय रेलवे एक्जिक्यूटिव बोर्ड का गठन किया जाय जिसमें निजी क्षेत्र एवं अकादमिक क्षेत्र के लोगों को शामिल किया जाय।

2. रेलवे का निगमीकरण करके सरकार की भूमिका सीमित किया जाय।

3. नये मैनेजर लाए जाएं और उन्हें एजेन्टों का पद दिया जाए।

4. नये गठित एक्जिक्यूटिव बोर्ड के अध्यक्ष की नियुक्ति विश्व चयन प्रक्रिया के जरिये होगी।

5. रेल बजट को खत्म किया जाए।

6. रेल के सभी उत्पादक इकाईयों का निजीकरण किया जाए।

7. रख–रखाव के काम में लगे सभी वर्कशापों का निजीकरण किया जाए।

8. रेलवे छापाखानों को बेच दिया जाए।

9. सारे रेलवे क्वाटर्स को बेचकर संसाधन जुटाया जाय। कमेटी का अनुमान है कि इससे करीब बीस हजार करोड़ रूपये जुटाया जा सकता है।

10. रख–रखाव के समस्त कार्यों का निजीकरण किया जाए।

11. रेलवे में खान–पान सेवा, मालों की बुकिंग, पार्सल बुकिंग, आरक्षण आदि सेवाओं का निजीकरण किया जाए।

12. रेलवे अस्पतालों का निजीकरण किया जाए।

13. रेलवे की सभी स्कूलों, कालेजों का निजीकरण किया जाए।

14. कमेटी ने यह भी सिफारिश की है कि जनता के विभिन्न तबकों को किराए में जो छूट दी जाती है उसे समाप्त किया जाय।

रिपोर्ट में यह भी कहा गया है कि इस समय देश में करीब 11 हजार सवारी गाड़ियां चल रही है। इनमें से 1000 ट्रेनों को बन्द कर देना चाहिए। कमेटी का कहना है कि यात्री ट्रेनों के कारण माल गाड़ियां ठीक से नहीं चल पाती। पहले देश में ढोये जाने वाले कुल माल का 86 प्रतिशत रेलवे का हिस्सा था, अब यह घटकर 44 प्रतिशत रह गया है।

राकेश मोहन कमेटी की पूरी रिपोर्ट रेलवे के सम्पूर्ण निजीकरण और उसके द्वारा प्रदत्त सुविधाओं का बाजार दर पर कीमत वसूलने की एक बेहद खतरनाक योजना है। पिछले कई वर्षो से कर्मचारियों की छंटनी और निजीकरण की कार्रवाई परोक्ष रूप से की जा रही थी। इस रिपोर्ट की मंजूरी के बाद से तो रेलवे को बेचने के रास्ते की सारी बाधाओं को समाप्त कर दिया गया।

रेलवे यूनियनों की ओर से भी इसके खिलाफ संघर्ष की कोई योजना नही दिख रही है। रेलवे ट्रेड यूनियनें पूरी तरह सरकार और पूंजीपतियों की दलाली कर रही है। उनकी इस अकर्मण्यता से रेल कर्मचारियों एवं रेल उद्योग का भविष्य पूरी तरह तबाही के रास्ते पर बढ़ रहा है।

इस तबाही के खिलाफ लडने के लिए रेल मज़दूरों को जागृत करने और उन्हें क्रान्तिकारी तरीके से गोलबन्द करने में 'बिगुल' की महत्वपूर्ण भूमिका बनती है। हम चाहते हैं कि बिगुल में रेल उद्योग का तबाह करने वाली साजिशों का भंडाफोड़ करने वाले रिपोर्ट छापे जायें और रेल मज़दूर आंदोलन को नये सिरे से खड़ा करने के लिए दिशा –निर्देश दिये जाय। बिगुल से हमें बहुत उम्मीद है।

क्रान्तिकारी अभिवादन के साथ एक कर्मचारी
एन.ई. रेलवे, कटिहार

(पृष्ठ एक से आगे)

खुला खेल फरुखाबादी......

पता चला है कि ज्यादातर बहुराष्ट्रीय कम्पनियां (मुख्यतः अमेरिकी व जापानी) 80 फीसदी सामान अपनी ही कम्पनियों से अथवा सहायक कम्पनियों से खरीदती है। उदाहरण के लिए मारुति उद्योग लिमिटेड अपनी कारों के लिए गियर बाक्स अपनी साझीदार जापानी कम्पनी सुजुकी से मंगाती है। इस प्रकार यह कम्पनियां सीधे लाभ के अतिरिक्त दूसरे–तीसरे तरीकों से अपनी मातृ कम्पनियों को फायदा पहुंचा रही हैं।

तस्वीर की भयानकता को समझने के लिए रिजर्व बैंक के इस अध्ययन रिपोर्ट को देखें। प्रत्यक्ष विदेशी निवेश वाली 334 कम्पनियों पर किये गये एक अध्ययन के अनुसार वर्ष 1999–2000 में इन कम्पनियों ने 90 अरब 52 करोड़ 10 लाख रुपये की विदेशी मुद्रा खर्च की, जबकि उनकी आमदनी महज 77 अरब 22करोड़ 10 लाख रुपये ही रही। यानी साल भर में 13 अरब 30 करोड़ 8 लाख रुपये (28 करोड़ डालर) की विदेशी मुद्रा देश से बाहर चली गयी। पिछले 10 वर्षो में इस धोखाधड़ी से कितनी बड़ी रकम विदेशी में पलायन कर गयी होगी इसका सहज अनुमान लगाया जा सकता है। स्थिति यह है कि इन दस वर्षो में सकल घरेलू बचत 1990–91 के 23.1 प्रतिशत से घटकर 1999–2000 में 22.3 प्रतिशत और सकल घरेलू पूंजी निर्माण 26.3 प्रतिशत से घटकर 23.3 प्रतिशत रह गया। देश पर विदेशी कर्ज लगातार बढ़ता चला गया। इन दस वर्षो में विदेशी से हुए कुल पूंजी निवेश का काफी बड़ा हिस्सा परजीवी, अनुत्पादक शेयर बाजारों में लगा है।

इन दस वर्षों में झूठ का धुम्रावरण खड़ा करके देश में संकटों और उनके कारणों की जो तस्वीर सरकारें प्रस्तुत करती रहीं वह ठीक उल्टी होती है। मसलन, सरकारें यह प्रचारित करती रहीं कि संकट की मूल वजह शिक्षा–स्वास्थ्य–कृषि–तमाम उद्योगों व गैस–किरासन आदि में दी जाने वाली सब्सिडियां हैं और उन्हें कम करके ही अथवा "घाटे" वाले कारखाने को बेचकर (बाद में तो भाजपा सरकार मक्कारी के साथ यहा तक कहने लगी कि "घाटा हो या फायदा" सार्वजनिक उद्योग बेचे जाएंगे, "सरकार का काम सरकार चलाना है, कारखाना नहीं।" और यही सच्चाई है कि सरकार पूंजीपतियों की मैनेजिंग कमेटी होती है। सरकार घाटा पूरा करेगी।

अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोष – विश्वबैंक–विश्वव्यापार संगठन के नुस्खा–निर्देशित वर्तमान बजट ने सब्सिडियां खत्म करने और सार्वजनिक उद्योगों को बेचने का समयबद्ध कार्यक्रम पेश किया– 2002 तक पेट्रोलियम पदार्थो (गैस,डीजल, मिट्टी तेल,पेट्रोल आदि) पर सारी सब्सिडियां खत्म करना, अप्रैल 2006 तक चरणबद्ध ढंग से यूरिया पर सब्सिडी पूरी तरह बन्द करना, 2002 तक चीनी के व्यापार में वायदा कारोबार को लागू करना और फिर चीनी की खरीद–बिक्री पर पूरा सरकारी नियंत्रण हटा लेना, यहां तक कि दवाओं के मूल्यों पर भी सरकारी नियंत्रण हटा लेना वर्तमान बजट में सरकार ने चालू वित्त वर्ष में विनिवेश से 10,000 करोड़ अर्जित करने का लक्ष्य रखा है।

अब पूंजीवादी लुटेरों के इस दुरंगेपन को ही देखें। भारत जैसे गरीब मुल्कों में जहाँ बहुलांश आबादी कृषि कार्यो में लगी हुई है वहाँ कृषि और कृषि उत्पादनों में सब्सिडियां खत्म हो रही हैं। जबकि साम्राज्यवादी मुल्कों में कृषि पर भारी सब्सिडियों दी जा रही हैं। कृषि उत्पादों पर अमेरिका 45 प्रतिशत , जापान 93 प्रतिशत, व यूरोपीय समुदाय

(शेष पृष्ठ दस पर)

भूल सुधारः

'बिगुल' अगस्त, 2001 अंक में के अन्तिम पृष्ठ पर प्रकाशित कविता "26 जनवरी- 15 अगस्त" नागार्जुन की कविता है। तकनीकी गलती से नागार्जुन का नाम छूट गया था। इसके लिए हमें खेद है।

– सम्पादक।

बिगुल का स्वरूप, उद्देश्य और ज़िम्मेदारियां

1. 'बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मजदूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षो और मजदूर आंदोलन के इतिहास और सबक से मजदूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूंजीवादी अफवाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

2. 'बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मजदूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

3. 'बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मजदूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

4. 'बिगुल' मजदूर वर्ग के बीच लगातार राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षो के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी-चवन्नीवादी भूजाछोर "कम्युनिस्टों" और पूंजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनबाजों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की कतारों से क्रान्तिकारी भरती के काम में सहयोगी बनेगा।

5. 'बिगुल' मजदूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

बिगुल यहां से प्राप्त करें

◆ शहीद पुस्तकालय, जनगण होम्यो सेवा सदन, मर्यादपुर, मऊ ◆ मौर्या बुक स्टाल, सआदतपुरा (निकट रोडवेज), मऊनाथभंजन, मऊ ◆ जनचेतना, जाफरा बाजार, गोरखपुर ◆ विजय इन्फारमेशन सेन्टर, कचहरी बस स्टेशन, गोरखपुर ◆ विश्वनाथ मिश्र, नेशनल पी.जी. कालेज, बड़हलगंज, गोरखपुर ◆ जनचेतना, डी 68, निरालानगर लखनऊ ◆ जनचेतना स्टाल, काफी हाउस के पास, हजरतगंज, लखनऊ, (शाम 5 से 8·30) ◆ राहुल फाउण्डेशन, 69, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ ◆ विमल कुमार, बुक स्टाल, निकट नीलगिरि काम्प्लेक्स, ए ब्लाक, इंदिरानगर, लखनऊ ◆ मदन पाल, दुकान नं. -28, नयी सब्जी मंडी, पुराने कपड़े का मार्केट, रुद्रपुर (ऊधमसिंह नगर) ◆ रामपाल सिंह, भारतीय जीवन बीमा निगम, आवास विकास, रुद्रपुर (ऊधमसिंहनगर) ◆ रवीन्द्र कुमार, भारतीय जीवन बीमा निगम, शाखा कार्यालय, पन्तनगर ◆ प्रोग्रेसिव बुक सेंटर, विश्वनाथ मंदिर गेट, बी.एच.यू. वाराणसी ◆ राजीव वर्मा, स्टूडेण्ट एजुकेशनल सेण्टर, मैनाताली (पुलिस चौकी के पास) मुगलसराय ◆ राजेन्द्र प्रसाद, रेणु मेडिकल की गली, मुख्य सड़क, रेणुकूट, सोनभद्र ◆ सत्यम वर्मा, 81, समाचार अपार्टमेंट, मयूर विहार-एक, नई दिल्ली ◆ ललित सती, एल.आई.सी., फैज रोड शाख, दिल्ली ◆ नई किरण पुस्तक भंडार, एफ-56, हरकेश नगर, ओखला, नई दिल्ली, ◆ डी. के. सचान, कृषि विज्ञान केंद्र, विकास भवन, नई कलक्ट्रेट, गाजियाबाद ◆ सुनील कुमार सिंह, सेक्टर-12 बी, 3159, बोकारो इस्पातनगर, बोकारो ◆ गणपतलाल, ग्राम काजी रसूलपुर, पो. तेघड़ा, बेगूसराय ◆ पीपुल्स बुक हाउस, पटना कालेज के सामने, पटना ◆ समकालीन प्रकाशन (प्रा.) लि. पुस्तक बिक्री केन्द्र, आजाद मार्केट, पीरमुहानी, पटना ◆ विमर्श, 22, स्वास्तिक काम्प्लेक्स, रसल चौक ,जबलपुर ◆ नरभिन्दर सिंह, द्वारा डा. सुखदेव हुन्दल, ग्रा/पो. सन्तनगर, जिला सिरसा ◆ पंकज, प्लाट नं. 33, सेक्टर-15, सोनीपत (हरियाणा) ◆ सुखविंदर द्वारा का० दशरथ लाल, मकान नं 14, लेबर कॉलोनी, गिल रोड, लुधियाना (पंजाब) ◆ राकेश गोरखा, सरस्वती पुस्तक मंदिर, प्रधान नगर, सिलीगुड़ी, दार्जीलिंग ◆ बुक मार्क, 6, बंकिम चटर्जी स्ट्रीट, कलकत्ता ◆ शर्मा बुक स्टाल, थाना रोड, चराली, तिनसुकिया नेपाल ◆ विश्व नेपाली पुस्तक सदन, श्रवनपथ, बुटवल, रुपनदेई, नेपाल ◆ विशाल पुस्तक सदन, बिजुवार बाजार, प्यूठान राप्ती अंचल ◆ विशाल पुस्तक पसंल, अस्पताल लाइन, बुटवल, लुम्बिनी, नेपाल ◆ लक्ष्मी नारायण मिश्र, 853, हिरन नगरी, सेक्टर4, पुजानगर, उदयपुर (राज.)

फरीदाबाद में पत्रकार को घर से उठाया तो दिनेशपुर में बर्बरतापूर्वक लाठियां भांजीं

फासिस्ट भाजपाइयों और उनके बिरादरों के राज में बढ़ता पुलिसिया ताण्डव

बिगुल संवाददाता

पुलिसिया दरिन्दगी और जुल्मोसितम ढाने की कहानी फासिस्ट भाजपा राज में आम बात बन चुकी है। आम गरीब, निहत्थे लोगों की बर्बर पिटाई, विरोध प्रदर्शनों/जुलूसों को निरंकुशतापूर्वक कुचलने, थानों में 'थर्ड डिग्री' का इस्तेमाल, फर्जी मुठभेड़ों में बेगुनाहों की हत्या और जनपक्षधर पत्रकारों–लेखकों की जुबान बन्द करने के पुलिसया तौर–तरीके की आजमाइश, बौराई पुलिस का रोजमर्रा का काम बन चुकी है। हालात ये हैं कि केन्द्रीय गृह मंत्री लालकृष्ण आडवाणी ने फर्जी मुठभेड़ में हत्याओं के आरोपी और मानवाधिकारों का खुला उल्लंघन करने वाले सुरक्षाकर्मियों को आम माफी देने की घोषणा कर दी है।

विगत 8 अगस्त को ऊधमसिंह नगर के दिनेशपुर में 'मजदूर –किसान संघर्ष समिति' द्वारा नगर पंचायत अध्यक्ष के घोटालों की जांच की मांग करते हुए शांतिपूर्ण जुलूस निकाला जा रहा था जिस पर पुलिस ने बर्बरता पूर्वक लाठी चार्ज किया। जुलूस में शामिल दर्जनों महिलाएं, पुरुष और बच्चे घायल हो गये। इस पुलिसिया ताण्डव में रिक्शा चालक, फल–ठेले वाले और आम गरीब जनता को भी नहीं बख्शा गया। संघर्ष समिति के नौ कार्यकर्ताओ को फर्जी मुकदमों में जेल में ठूंस दिया गया इस दिन पूरे क्षेत्र में खाकी वर्दीधारियों के आतंक का राज कायम हो गया था। हर जगह दहशत का माहौल व्याप्त था।

उधर फरीदाबाद में आपातकाल के काले दिनों की याद दिलाने वाली एक धटना उस वक्त घटी जब स्थानीय 'मजदूर मोर्चा' अखबार के सम्पादक सतीश कुमार को सादी वर्दी धारी पुलिस ने लगभग अपहरण के अन्दाज में घर से उठा लिया और बाद में फर्जी मुकदमा कायम करके जेल में डाल दिया। सतीश कुमार की गलती यह थी कि उनका अखबार फरीदाबाद के पुलिस अधीक्षक के भ्रष्टाचार और 'हूडा' की धांधलियों के ख़िलाफ मुहिम चला रहा था और जनता के सामने सत्य उजागर कर रहा था सतीश कुमार ने अधीक्षक के ख़िलाफ आपराधिक मुकदमा भी कायम कर रखा था। पुलिस अधीक्षक केन्द्रीय गृह राज्य मंत्री का दामाद है और सत्ता में उसकी पकड़ भी मजबूत है।

सतीश कुमार की गिरफ्तारी सारे कानूनों को ताक पर रखकर और मानवधिकारों का खुला उल्लंघन करते हुए इस तरह से की गयी जैसे वह एक ख़तरनाक अपराधी हो। वैसे भी पुलिस महकमे के लिए आईपीसी/सीआरपीसी और मानवाधिकारों का कोई मायने नहीं हैं यहां तो पुलिस का अपना जंगल–कानून चलता है। बगैर किसी सर्चवारण्ट के आधी रात में छापेमारी की घटनाएं जनपक्षधर लेखकों–पत्रकारों तक का दमन–उत्पीड़न आज आम बात बन चुकी है।

फरीदाबाद पुलिस की गुंडागर्दी का आलम ये है कि सतीश कुमार की गिरफ्तारी के विरोध में आवाज उठाने वाले फरीदाबाद के अन्य पत्रकारों को भीं डराया–धमकाया जा रहा है। एस0पी0 सत्ता के गलियारों में अपनी पहुँच का कितना बेखौफ होकर इस्तेमाल कर रहा है, यह इससे जाहिर है कि जगह–जगह पत्रकारों, लेखकों, मज़दूर संगठनों और अन्य जनतांत्रिक अधिकार कर्मियों के विरोध के बावजूद अब तक उस पर कोई कार्रवाई नहीं हुई है। इतना ही नहीं न्यायपालिका तक भी अपनी पहुँच का इस्तेमाल करने में वह कामयाब हो रहा है। फरीदाबाद सेशन कोर्ट ने सतीश कुमार की जमानत की अर्जी पहले ही खारिज कर दी थी। चंडीगढ़ हाईकोर्ट ने भी पहली सुनवाई पर न केवल जमानत की अर्जी खारिज कर दी, बल्कि अगली सुनवाई के लिए चार महीने बाद की तारीख दे दी। यहां यह तथ्य भी ग़ौरतलब है कि हाईकोर्ट और सेशन के जिन जजों ने जमानत की अर्जी खारिज की है वे सगे भाई हैं।

चाहे दिनेशपुर में शान्तिपूर्ण जुलूस पर पुलिस दमन की घटना हो या पत्रकार सतीश कुमार को उठाने की कार्रवाई हो, ये तो फासिस्ट भाजपा के शासन की महज एक बानगी है। आज के दौर में पुलिस जुल्म और गरीब आबादी को उसकी जगह जमीन से उजाड़ना आम बात बन चुकी है। समाज में जैसे –जैसे बेचैनी बढ़ती जा रही है, शासनतंत्र के निरंकुश हमले बढ़ते जा रहे हैं। शासनतंत्र लगातार ज्यादा चाक चौबन्द होता जा रहा है। भारतीय पुलिस अपनी अमानवीय संवेदन शून्यता, फर्जी मुठभेड़ों में लोगों की हत्याओं और हिरासत में होने वाली मौतों के लिए कुख्यात हो चुकी है।

आज के माहौल में चूंकि जनपक्षधर शक्तियां बिखरी हुई हैं और विरोध का स्वर मद्धिम दिख रहा है इसलिए दमनकारियों के हौसले बुलन्द हैं। इस निरंकुशता का मुकाबला मेहनतकशों और जनवाद प्रेमी शक्तियों के संगठित प्रयास से ही किया जा सकता है। और इसका जवाब देना ही होगा। देश भर में अलग–अलग इलाकों में चल रहा प्रतिरोध संघर्ष जब संगठित रूप लेगा, तब जनता अपने ऊपर हुए एक–एक जुल्म का हिसाब लेगी।

(पृष्ठ आठ से आगे)

'बदबू' कहानी का शेष

तो आना चाहिए था।

'शायद उनके बच्चे बीमार हो गये हों,' झुझंलाकर उसने उत्तर दे दिया।

हरीराम ने फिर बात दुहराई इस बार स्वर में चाटुता की भरमार थी–

'हम तो तुम्हारे पीछे हैं भाई। जैसा तुम कहोगे वैसा करेंगे। मैं तो ठीक टैम पर आ गया था, देख लो।'

'तुम ही ठीक टैम पर न आओगे तो चीफ साहब को रिपोट कौन देगा।'

हरीराम की ओर उपेक्षापूर्ण दृष्टि डालकर घृणा से उसने कहा और अपनी साइकिल उठाकर बाहर चल दिया।

उसके विरुद्ध कब कौन –सा षड्यंत्र रचा दिया जाए, इसका उसे संदेह रहने लगा था। छुट्टी होने पर उसने शीघ्रता से थैला कंधे पर डाला। दुपहर में उसने सब रोटियाँ खा ली थीं पर आज थैला अन्य दिनों की अपेक्षा कुछ भारी था। विस्मय से उसने रोटी के डिब्बे को खोलकर देखा.... एक कागज में कुछ पुर्जे लिपटे रखे थे। उसने अनुभव किया कि उसके हृदय की धड़कन तेज हो गई है। आवेश में उसकी मुट्ठी भिंच गयी, परंतु फिर संयत होकर उसने वह सामान पास ही अलमारी में डाल दिया।

बाहर पंक्ति के पहले सिरे पर फोरमैन चिल्ला–चिल्ला कर लोगों को अपने डिब्बे थैले खोलकर दिखाने का आदेश दे रहा था। उसकी बारी आ गई थी। फोरमैन ने स्वयं डिब्बा–थैला हाथों में लेकर देखा, असंतोष के कारण उसका मुँह फीका पड़ गया। सर्चर को सबकी जेबें टटोलने का उसने आदेश दिया, उसकी जेबें भी स्वयं फोरमैन ने टटोली, परंतु फोरमैन के चेहरे पर फिर निराशा छा गई। जाते–जाते उसने फोरमैन की ओर देखा। फोरमैन ने आँखे भूमि की ओर झुका ली थी। गर्व से छाती उठाकर वह गेट की ओर चल दिया।

प्रातः काल अंतिम साइरन हो जाने पर गेट बंद हो जाना चाहिए, परंतु आधा घंटा उसके खोले जाने की प्रतीक्षा करनी पड़ती है, परंतु व्यावहारिक रूप में ऐसा नही होता। साइरन सुनकर दूर से पैदल आने वाले दौड़ लगाना शुरू कर देते हैं। साइकिलों के पैडिल दुगनी गति से चलने लगते हैं। लोग हाँफते–हाँफते दो तीन मिनट में अंदर पहुँच पाते हैं। पकी उम्र के बड़े–बूढ़े अंदर आकर घड़ी भर दम लेने के बाद ही हाजिरी पर जा पाते है। परंतु उस दिन वर्क्स मैनेजर ने साइरन के बाद ही गेट बंद करवा दिया। वह गेट से बीस–तीस गज की दूरी पर ही था परंतु वहाँ पहुँचने से पहले ही चौकीदार ने जाली खोल दी।

अभी बीस–पच्चीस आदमी और भी थे जो हाँफते हुए चले आ रहे थे।निकट आकर सभी उदास हो गए। आधा घंटा देर में आने का दंड छः आठ आना से कम नहीं होता।

पिछली बार वेतन के दिन घर जाने पर पत्नी ने उससे पूछा था,'कितने हैं?'

'चौवन आठ आनें'

'अच्छा ! मैने पूरे पचपन का हिसाब लगाया था। बबुआ की टोपी इस महीने भी रह गयी।'

हाँफंते हुए लोगों मे से कितनों के बबुओं की टोपी इस बार भी रह जायेगी, उसने सोचा। परंतु तभी उसने जो कुछ सुना उसे सुनकर उसे ऐसा लगा जैसे सारा दोष अकेले उसी का हो। वही झुकी कमर वाले बुजुर्ग हाँफते हुए कह रहे थे,'घोड़े के पीछे और अफसर के आगे कौन समझदार जाएगा?' एक आदमी के कारण इतने लोगों का नुकसान हो गया, ऐसे लड़ने–भिड़ने को ही जवानी बना रखी हो तो आदमी दंगल करे, अखाड़ें में जाए। नौकरी में तो नौकर की ही तरह रहना चाहिए।

उसका मन हुआ कि बुजुर्ग के पास जाकर कुछ बात करे। पर न जाने क्यों वह ऐसा न कर सका।

दिन–भर वह यंत्रवत् काम करता रहा। थकान के कारण शरीर चूर–चूर हो रहा था। परंतु बैठकर सुस्ता लेने को भी उसका मन नहीं हुआ। कैंटीन में जाकर उसने चाय ली और अनुभव किया कि चाय फीकी है। पहले किसी दिन ऐसी बात होती तो वह कैंटीन मैनेजर से शिकायत करता परंतु आज आधी चाय छोड़कर चला आया। ग्रीज और तेल लगा हुआ सामान उठाने के कारण हाथ गंदगी से भर गये थे; साइरन की आवाज उसके कानों में पड़ी तो उसने काम बंद किया। ऐसा लगता था कि साइरन यदि किसी कारण से न बजता तो वह उसी प्रकार यंत्रवत काम करता रहता। जल्दी–जल्दी में उसने दोनों हाथ कैरोसीन तेल में धो डाले। साबुन का डिब्बा टटोलकर देखा तो वह खाली था। भूमि पर से थोड़ी मिट्टी उठाकर वह नल की ओर चल दिया। पिछले तीन–चार महीनों की नौकरी में आज वह पहली बार मिट्टी से हाथ धो रहा था। भुरभुरी मिट्टी को पानी के साथ लगाकर हाथों में मला ओर फिर दोनों हाथ नल के नीचे लगा दिए। पानी के साथ मिट्टी की पतली पर्त भी बह चली। दूसरी मिट्टी लगाने से पहले उसने हाथों को सूँघा और अनुभव किया कि हाथों की गंध मिट चुकी है। सहसा एक विचित्र आतंक से उसका समूचा शरीर सिहर उठा। उसे लगा जैसे आज वह भी घासी की तरह इस बदबू का आदी हो गया है। उसने चाहा कि वह एक बार फिर हाथों को सूँघ ले लेकिन उसका साहस न हुआ। परंतु फिर बड़ी मुश्किल से वह दोनों हाथों को नाक तक ले गया और इस बार उसके हर्ष की सीमा न रही। पहली बार उसे भ्रम हुआ था। हाथों में कैरोसीन तेल की बदबू अब भी आ रही थी।

(पृष्ठ पांच से आगे)

अंधी लूट के हवाले.....

कि जमीन के नीचे लगभग 800 लाख टन कोयले में आग लगी हुई है और रानीगंज एवं झरिया जैसे शहरों के अस्तित्व पर ही खतरा मंड़रा रहा है। अगर नये सिरे से निजीकरण पूरी तरह लागू हो गया तो हालात क्या होंगे इसका सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। लेकिन हमारे देश के हुक्मरानों को मज़दूरों की तबाही या एक–दो शहरों के पूरी तरह आग के हवाले हो जाने से भी कोई फर्क नहीं पड़ने वाला है। वे तो रोमन सम्राट नीरो के वंशज हैं जो रोम के धू–धू जलने पर भी चैन की बाँसुरी बजा रहा था। इसलिए, कोयला उद्योग को एक बार फिर मुनाफाखोरों के हवाले करने की तैयारी जारी है। कोयला खदान राष्ट्रीकरण (संशोधन) विधेयक 2000 तैयार हो चुका है जिसे जल्दी ही (सम्भवतः जाड़े के सत्र में) संसद पारित करने वाली है।

लेकिन, सरकार की इस कार्रवाई को कोयला मज़दूर चुपचाप बर्दाश्त नहीं करेंगे। उन्होंने अपना आक्रोश प्रकट करना शुरु भी कर दिया है। पुराने काले दिनों की ओर लौटने से रोकने की वे अन्तिम दम तक कोशिश करेंगे। पिछले दिनों केन्द्रीय ऊर्जा मंत्रालय ने इस संशोधन पर मज़दूरों की प्रतिक्रिया जानने के लिए जब एक सर्वेक्षण कराया तो मज़दूरों के आक्रोश से डरकर चुनावी पार्टियों से जुड़ी दलाल ट्रेड यूनियनों को भी इसके ख़िलाफ राय जाहिए करनी पड़ी। जाहिर है कि आम कोयला मज़दूर शासक वर्गों के इस हमले का मुंहतोड़ जवाब देने के लिए तैयार है। खटका अगर है तो सिर्फ यही कि क्या ट्रेड यूनियन नेता उनका साथ देंगे?

अधिकारियों की लूट खसोट से सुपर बाजार कंगाल, कर्मचारी संघर्ष की राह पर

(बिगुल प्रतिनिधि)

दिल्ली। अधिकारियों की अन्धाधुन्ध लूटखसोट से एक समय मुनाफे में रहने वाले सहकारी संस्थान सुपर बाजार कंगाल हो गया है। हालत यह है कि संस्थान में काम कर रहे कर्मचारियों को पिछले पांच माह से वेतन नहीं मिला है। कर्मचारी अपना वजूद बचाने और इस लूटखसोट के खिलाफ 'सुपर बाजार बचाओ संघर्ष समिति' के बैनर तले लम्बे समय से संघर्ष की राह पर है। धरना, अनशन–प्रदर्शन का क्रम यह रिपोर्ट लिखने तक जारी है। कर्मचारी आर–पार की लड़ाई लड़ रहे हैं।

सुपर बाजार के अधिकारियों की लूटखसोट इतनी जगजाहिर है कि केन्द्रीय खाद्य मंत्री शान्ता कुमार तक को संसद में यह मानना पड़ा है कि कुप्रबन्धन और आय से ज्यादा खर्च के कारण ही सुपर बाजार घाटे में है। सुपर बाजार की स्थिति पर कृषि एवं सहकारिता विभाग के संयुक्त सचिव के0एस0 धौरिया की रिपोर्ट के अनुसार पूर्व चेयरमैन एस0एस0 धूरी, उप चेयरमैन सुरेन्द्र गांधी, हरचरण सिंह जोश, राम महेश्वरी, अमरजीत सिंह चटवाल और उपमहाप्रबन्धक विजय कुमार वित्तीय घोटालों में शामिल रहे हैं। इनके गलत फैसलों के कारण सुपर बाजार को वर्ष 1998–99 और 1999–2000 में करीब 24 करोड़ रूपये का घाटा उठाना पड़ा है। इन सभी अधिकारियों को तकरीबन 18 करोड़ रुपये की वसूली के नोटिस भी जारी किये जा चुके है।

पूर्व चेयरमैन एस0एस0 धूरी पर नियम–कानूनों को ताक पर रखकर फैसले लेने, मनमानी नियुक्तियां करने, बिना निविदाएं मंगाये सुपर बाजार में बिकने वाले अनाज, सब्जियों व अन्य सामानों का आर्डर देने, बेतहाशा फिजूल खर्चियां करने व संस्थान की सम्पत्ति को निजी कामों में इस्तेमाल करने का आरोप उक्त रिपोर्ट में लगाया गया है।

धूरी की मनमानियों के बारे में सिर्फ एक उदाहरण ही काफी है। रिपोर्ट में कहा गया है कि अगर सुपर बाजार घाटे में चल रहा था तो अधिकारियों के वेतन पर इतना खर्चा क्यों किया गया। इस गेस्ट हाउस को धूरी अपने निजी निवास के रूप में इस्तेमाल करते रहे जबकि इसका 18 हजार महीने का किराया संस्थान भरता रहा। इस गेस्ट हाउस को सजाने–संवारने के लिए पौने चार लाख रुपये का फर्नीचर खरीदा गया। बिजली पानी हाउस का एक लाख से ऊपर का बिल भी सुपर बाजार को देना पड़ा। गेस्ट हाउस सम्बन्धी तमाम भुगतानों में घपले बाजियां भी की गयीं। चार्टर्ड एकाउन्ट की रिपोर्ट के मुताबिक गेस्ट हाउस पर कुल मिलाकर 13 लाख अठारह हजार रुपये खर्च हुए पर आधिकारिक तौर यह राशि सिर्फ आठ लाख 27 हजार ही दिखाई गयी। इसके अलावा भी कई अन्य घपले– घोटाले भी हुए।

एक अन्य बड़ा घोटाला भी ऐन वक्त पर केन्द्रीय सतर्कता विभाग की दखल के कारण होते –होते बचा था। धूरी महोदय ने सुपर बाजार के लोगोंवाल टावर स्थित प्लॉट पर वी0 एण्ड वी0 कंस्ट्रक्शन कम्पनी के साथ एक अवैध सौदा कर भवन बनाने का ठेका दिया था। लेकिन यह घपला पकड़ में आ गया। नतीजतन, सी0बी0आई0 ने धूरी सहित सुपर बाजार के चार अधिकारियों और कंस्ट्रक्शन कम्पनी 16 जुलाई 2000 को तीस हजारी अदालत में एफ0आई0 आर0 दर्ज करना पड़ा। अगर यह घपले बाजी पकड़ में न आती तो संस्थान को करोड़ों रुपये का चूना और लगता।

लेकिन इन घपलो–घोटालों के उजागर होने और खाद्य मंत्री द्वारा संसद में इसे स्वीकार करने के बाद भी सुपर बाजार को संकट से उबारने और सैकड़ों कर्मचारियों का भविष्य डूब जाने से बचाने के लिए अब तक कोई ठोस कदम सरकार ने नहीं उठाया है। नतीजतन कर्मचारियों का संघर्ष जारी है। इसके अलावा कोई रास्ता भी नहीं है।

यह देश की राजधानी के ऐन भीतर कर्मचारियों की जिन्दगी की यह दशा है। देश की उस राजधानी के भीतर जहाँ संसद बैठती है, जहाँ आला अदालत है और जहाँ सभी 'राष्ट्रीय' राजनीतिक दलों के केन्द्रीय दफ्तर है। लेकिन फिर भी सुपर बाजार कर्मचारियों को न्याय नहीं मिल रहा। हाँ, यह अलग बात है कि न्याय के लिए संघर्षरत ये मेहनतकश यह अच्छी तरह समझ चुके हैं कि संसद नपुंसक है, सरकार पूंजीपतियों की जूतियाँ चाटती है, सभी चुनावी पार्टियां देशी–विदेशी

शेष पृष्ठ दस पर

(पृष्ठ एक से आगे)

ठेकाकरण को मान्यता दी....

ने कम से कम दो ऐसे खतरनाक फैसले दिये है जो देश के करोड़ों मजदूरों–कर्मचारियों के लिए विनाशकारी साबित होंगे। उधर सरकार ने ट्रेड–यूनियन एक्ट में संशोधन का काला कानून संसद से पारित करवा लिया है।

सरकार का इरादा तो तमाम श्रम कानूनों में व्यापक बदलाव करके एक ही झटके में मजदूरों को मालिकों के आगे लाचार बना देने का था, लेकिन यूनियन नेतृत्व के निकम्मेपन और गद्दारी के चावजूद देशभर में मजदूरों ने जिस तरह से विरोध किया, उसे देखते हुए सरकार ने अपनी योजना बदल दी है। अब वह यही काम किश्तों में कर रही है और जनता की आलोचना से परे मानी जाने वाली न्यायपालिका बखूबी उसका साथ निभा रही है। इस नई चाल की शुरुआत इस वर्ष के बजट में ही हो गई थी जब पूंजीपतियों के टुकड़खोर वित्तमंत्री ने तालाबंदी के पहले सरकार से अनुमति लेने की सीमा 100 मजदूरों से बढ़ाकर 1000 कर दी थी, यानी अब 1000 कर्मचारियों वाली कोई कम्पनी जब चाहे अपने यहां छंटनी–तालाबंदी कर सकती है।

औद्योगिक प्रतिष्ठानों में मजदूर यूनियनों की बढ़ती संख्या पर "लगाम कसने" और कामकाज का "स्वस्थ माहौल" बनाने के नाम पर ट्रेड यूनियन (संशोधन) विधेयक 2001 को पिछले महीने संसद ने मंजूरी दे दी यूनियनों को पालतू बनाने वाला और मालिकों की बढ़ती आक्रमकता के माहौल में नई यूनियनें गठित करना मुश्किल बना देने वाला यह कानून रस्मी विरोध के बीच बड़े आराम से पारित हो गया।

गोरों की जालिम हुकूमत से हमारे भाइयों ने कठिन लड़ाइयां लड़कर ये ट्रेड यूनियन एक्ट, 1926 बनाने पर मजबूर किया था जिसके तहत किसी भी कारखाने में सात कर्मचारियों की मर्जी से ट्रेड यूनियन का पंजीकरण कराया जा सकता था। अब नये प्रावधान के तहत किसी प्रतिष्ठान में जब तक कुल कर्मचारियों के कम से कम 10 प्रतिशत या 100 सदस्य (जो भी कम हो) नहीं होते, तब तक यूनियन पंजीकृत नहीं हो सकती। इसमें कोई शक नहीं कि पुराने कानूनों का दुरुपयोग भी हुआ और मजदूरों की ताकत को बांटते हुए एक–एक विभाग या कारखाने में दर्जनों यूनियनें खड़ी हो गई जिसके लिए नेतृत्व के निहित स्वार्थों का टकराव जिम्मेदार है। इसी का फायदा उठाकर सरकार यह घातक प्रावधान लाने में कामयाब रही। यूनियनों का भ्रष्ट नेतृत्व अपनी हरकतों से बार–बार सरकार को अधिकारों पर ऐसे हमलों का मौका देता ही रहा है।

इस कानून से खण्ड–खण्ड बंटे हुए मजदूरों का बंटवारा तो कम नहीं होगा, और न ही ऐसा करना सरकार की मंशा है। होगा, यह कि बर्बर लूट और शोषण के शिकार मजदूरों के लिए संगठित होना और भी मुश्किल हो जाएगा। यूनियन का पंजीकरण पहले भी लालफीताशाही से भरी एक जटिल कानूनी प्रक्रिया रही है और ज्यादातर (विशेषकर निजी) कारखानों–कम्पनियों में मालिकान ने यूनियन बनने ही नहीं दी है। जहां कहीं यूनियन बनी भी है तो मैनेजमेंट से लम्बी लड़ाई के बाद ही ऐसा हो सका है। दिल्ली–नोयडा–गाजियाबाद का विशाल औद्योगिक क्षेत्र हो या उत्तर प्रदेश का तराई क्षेत्र या फिर लुधियाना, करनाल, पानीपत से लेकर देश भर में उभरे असंख्य नये औद्योगिक इलाके हों यहाँ की ज्यादातर से इकाइयों में यूनियनें नहीं है। कम्प्यूटर से लेकर मार्केटिंग तक की सेवा क्षेत्र की तमाम कम्पनियों में यूनियन बनने नहीं दी जाती। अखबार से लेकर विमान सेवा तक चलाने वाले एक विराट प्रतिष्ठान के हजारों–हजार कर्मचारियों को संगठित होने का अधिकार नहीं है। जैसे ही कुछ सचेत और साहसी मजदूर यूनियन बनाने की कोशिश शुरु करते है उन्हें धमकाया जाता है, प्रताड़ित किया जाता है और अक्सर बाहर कर दिया जाता है। ऐसे में नये कानून के तहत यूनियन खड़ी करना कितना मुश्किल हो जाएगा, इस बात को आसानी से समझा जा सकता है।

संशोधित कानून के नये प्रावधानों के तहत अब यूनियन का पदाधिकारी वही हो सकता है जो सम्बन्धित प्रतिष्ठान में कार्यरत हो। अब तक किसी यूनियन के सारे पदाधिकारी "बाहरी व्यक्ति" हो सकते थे जिसमें अवकाश प्राप्त कर्मी भी शामिल हों। जाहिर है, इस प्रावधान का भी काफी दुरुपयोग हुआ है और सरकार इसी बात की दुहाई दी है। लेकिन सर्वाधिक दुरुपयोग तो खुद संसद का हुआ है तो सरकार इसे ही खत्म क्यों नहीं कर देती ? दरअसल दुरुपयोग रोकना सरकार की मंशा ही नहीं है। इस बदलाव से नौकरी से निष्कासित, मैनेजमेंट के षड्यंत्र के शिकार कर्मचारी, यूनियन से बाहर हो जाएंगे इससे भी महत्वपूर्ण बात यह है कि घोर दमनकारी स्थितियों में यूनियन बनाने और उसमें राजनीतिक विचारों के प्रचार–प्रसार की प्रक्रिया बाधित होगी। इस प्रावधान का असल मकसद यही है कि अर्थव्यवस्था के दलदल में धंसे ट्रेडयूनियन आंदोलन में क्रान्तिकारी तत्व न घुसने पायें और ट्रेड यूनियनों को क्रान्तिकारी तेवर न दिया जा सके। उधर, देशभर में हावी मजदूर विरोधी माहौल के साथ कदम मिलाते हुए माननीय सुप्रीम कोर्ट भी दनादन ऐसे फैसले दे रहा है जिनका फायदा उठाकर मालिकान मजदूरों को निचोड़ डालेंगे।

इसी अगस्त में एक अहम फैसले में सुप्रीम कोर्ट की संविधान पीठ ने ठेके पर काम करने वाले मजदूरों को नियमित करने की अनिवार्यता को खत्म कर दिया। अदालत ने इस मामले में 1995 के अपने ही फैसले को पलट दिया। अब तक यह कानूनी प्रावधान था कि 240 दिन की निरंतर सेवा के बाद कर्मचारी को नियमित करना आवश्यक होगा। हालांकि ज्यादातर जगहों पर ऐसा होता नहीं था और 'ब्रेक' डालकर उनसे जीवनभर काम लिया जाता रहा है, लेकिन इस फैसले ने ठेका कर्मी के नियमितीकरण का रास्ता ही बन्द कर दिया।

अपने इसी फैसले में अदालत ने ठेकेदारी प्रथा की पीठ थपथपाते हुए सरकारी उपक्रमों में साफ–सफाई और सिक्योरिटी का काम ठेके पर कराने को मान्यता दे दी। इस सन्दर्भ में 1976 की सरकारी अधिसूचना को भी अदालत ने रद्द कर दिया। ग्राम पंचायतों से लेकर सरकारी विभागों में तमाम काम आज ठेके पर हो रहे है, विश्वविद्यालयों से लेकर मेडिकल और इंजीनियरिंग कालेजों में ठेके पर शिक्षक पढ़ा रहें हैं और ज्यादातर निजी कम्पनियों और कारखानों में आधे से ज्यादा काम ठेके पर कराया जा रहा है– इस बात को ध्यान में रखें तो बिल्कुल साफ हो जाएगा कि अदालत के इस फैसले का असर कितनी दूर तक होगा।

इससे पहले इसी साल जनवरी में सुप्रीम कोर्ट ने एक और खतरनाक फैसले में कहा था कि अब मालिक या मैजेमेन्ट प्रोबेशन पर काम कर रहे कर्मचारी को नियमित करने के लिए बाध्य नहीं है। पहले किसी प्रोबेशनर को हटाने के पहले नियोक्ता को यह साबित करना पड़ता था कि उसे हटाये जाने के उचित कारण मौजूद हैं।अब यह बाध्यता खत्म कर दी गई है। मालिकान जब चाहें प्रोबेशन पर काम करवाने के बाद किसी को भी बाहर कर देने के लिए आजाद हैं।

सरकार द्वारा श्रम कानूनों में बदलाव पर तो लोगों का ध्यान जाता है लेकिन अदालती फैसलों के जरिए बिना शोर–शराबे के मजदूरों के अधिकार कम किये जा रहे हैं। प्रायः इन फैसलों की खबरें भी अखबारों में ठीक से नहीं छपती हैं। लेकिन मालिकान और उनके खुर्राट वकील इन्हें फौरन लपक लेते हैं और मजदूरों को कुछ और निचोड़ने , और दबाने और लूटने में इनका इस्तेमाल करते है।

मज़दूर विरोधी पूरे परिदृश्य को न देख पाने की वजह से बहुत से मजदूर साथी और अनेक श्रमिक – हितैषी बुद्धिजीवी भी इस भ्रम में पड़ जाते हैं कि श्रम कानूनों में बदलाव की सरकारी कोशिशें व्यापक विरोध के कारण मंद पड़ गई हैं। ऐसा कतई नहीं है। सरकार ने सर्फ रास्ता बदला है। देशी–विदेशी पूंजीपतियों की तमाम संस्थाएं सरकार पर लगातार दबाव डाल रही हैं। कि भारत के मजदूर वर्ग को बिलकुल पालतू बनाया जाये। प्रधानमंत्री उनके दरबार में जा–जाकर यकीन दिला रहे हैं कि छंटनी–तालाबंदी करने और मनमाफिक मजदूरी तय करने का अधिकार अन्हें अवश्य दिया जाएगा ताकि वे अर्थव्यवस्था की गाड़ी को "विकास" के रास्ते पर सरपट दौड़ा सकें।

दूसरी ओर मज़दूर आंदोलन टूटा और बिखरा हुआ है। नेतृत्व की बार–बार की गद्दारी ने उसे हताशा से भर दिया है। आधे से अधिक मजदूर आबादी पूरी तरह असंगठित है जिसे उसके अधिकारों, और उसके भीतर की ताकत का अहसास भी नहीं है। लेकिन शासकों के ये कदम उसे जागने और लड़ने पर मजबूर कर रहे हैं। ऐसे माहौल में जरुरी है कि व्यापक मजदूर वर्ग के बीच राजनीतिक अधिकारों के प्रचार–प्रसार, ट्रेड यूनियनों को क्रान्तिकारी धार देने और लगन और साहस के साथ असंगठित श्रमिकों को संगठित करने का काम तेज कर दिया जाये।

निजीकरण की ओर बढ़ता कोयला उद्योग, राष्ट्रीकरण का नकाब उतारकर फेंकता पूंजी का दानव

शरद कुमार

लगभग तीस वर्षों बाद कोयला उद्योग एक बार फिर निजीपूंजीपतियों की अन्धी लूट के हवाले किया जा रहा है। पिछले एक दशक से देश में निजीकरण–उदारीकरण की जो आंधी चल रही है, उसमें ऊर्जा का यह बेहद महत्वपूर्ण परम्परागत क्षेत्र भला कैसे बचा रह सकता था। पूंजी का दानव तो बाजार और कच्चे मालों के स्रोत के लिए समूचे भूमंडल की खाक छान रहा है, फिर देशी पूंजी का दानव अपनी ही धरती को अछूता कैसे छोड़ देता। अगर आर्थिक सुधारों के आखिरी निर्णायक दौर में इस क्षेत्र के दोहन की रणनीति को अमली जामा पहनाया जा रहा है तो इसका कारण सिर्फ एक है– फटाफट मुनाफा बढ़ाने के लिए तुलनात्मक रूप से अधिक महत्वपूर्ण और कम जोखिम वाले क्षेत्रों पर पहले कब्जा जमा लेना। कच्चे माल के स्रोतों और श्रम सम्पदा पर पहले दौर का कब्जा अभियान कमोबेश सफलतापूर्वक सम्पन्न हो जाने के बाद अब निर्णायक दौर में बचे–खुचे क्षेत्रों की बारी है।

मालूम हो कि अंग्रेजों के समय और उनके जाने के लगभग पच्चीस सालों बाद तक भी कोयला उद्योग पर निजी पूंजीपतियों का ही कब्जा था। इस पूरी अवधि के दौरान मुनाफे की हवस में न केवल इस प्राकृतिक सम्पदा का अन्धाधुन्ध दोहन किया गया वरन् खदान मज़दूरों के बर्बर शोषण –दमन की अनगिन ऐसी कहानियां लिखी गयीं जिन्हें आज तक भुलाया नहीं जा सका है। इस अवधि के बारे मे 1954-55 में स्वयं **कोयला आयुक्त ने लोक सभा की प्राक्कलन समिति** को पेश अपनी एक रिपोर्ट में कहा था *"चरम खुली होड़ की इस अवधि में मुनाफा ही प्राथमिक उद्देश्य था। सुरक्षा के उपाय विरले ही नजर आते थे और राष्ट्रीय हितों को पूरी तरह भुला दिया गया था। उद्योग और देश दोनों ही आज इस राष्ट्रीय सम्पदा के निर्मम और अन्धाधुन्ध शोषण की कीमत चुका रहे हैं।"* कोयला आयुक्त ने आगे आगाह करते हुए लिखा था, *"अगर राष्ट्रीकरण अगले 25 वर्षों के लिए टाल दिया जाता है और उद्योगों को खुली छूट जारी रहती तो इस अवधि के खत्म होने पर अधिग्रहण करने के लिए देश के पास कुछ नहीं बचा रहेगा।"*

कोयला आयुक्त की रिपोर्ट को स्वीकार करते हुए उस समय प्राक्कलन समिति ने यह निष्कर्ष निकाला था कि कोयला उद्योग का राष्ट्रीयकरण औद्योगिक विकास के लिए दूरगामी रुप से आवश्यक है। लेकिन औद्योगिक विकास के दूरगामी हितों के बारे में सोचने का काम पूंजीपतियों के राजनीतिक प्रतिनिधियों, सरकारों और पूंजीवादी विचारकों का होता है। अलग–अलग पूंजीपतियों को तो सिर्फ अपने चटपट मुनाफे से ही लेना –देना होता है। इसलिए अपने राजनीतिक टट्टओं और सरकार नाम की मैनेजिंग कमेटी पर दबाव डालकर कोयला उद्योगों के पूंजीपति ही कर सकते हैं। इसी आधार पर सरकार अब कोयला क्षेत्र के निजीकरण की दिशा में आगे बढ़ रही है।

ज़ाहिर है कि जब पूंजीपतियों का हित ही केन्द्र में हो तो तर्क कुछ भी गढ़े जा सकते है। कोयला उद्योग के राष्ट्रीकरण के समूचे दौर की समीक्षा के लिए गठित के0एस0 आर0चारी समिति ने राष्ट्रीकरण के लक्ष्य को हासिल करने में हुई नाकामी का रोना रोते हुए निजीकरण की सिफारिश की है। ये वही चारी महोदय हैं जो

कोयला उद्योग का फिर से निजीकरण करने के पीछे भी वही पुराना मकसद काम कर रहा है पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के संकटों को दूर करना। इसी संकट को दूर करने के लिए राष्ट्रीकरण किया गया था और नये रूप में प्रकट हुए संकट को दूर करने के लिए राष्ट्रीकरण का नकाब उतार कर नये सिरे से निजीकरण की तैयारी हो रही है।

राष्ट्रीकरण का काम वे तब तक टलवाते रहे जब तक मुनाफा निचोड़ने की अपनी आखिरी सीमा तक नहीं पहुँच गये। आखिरकार 1971 और 1973 में, इन्दिरा गांधी के शासनकाल में, कुमारमंगलम कमेटी की रिपोर्ट को लागू करते हुए दो किश्तों में कोयला उद्योग का तब राष्ट्रीकरण किया गया जब आगे दोहन के लिए जरूरी पूंजीनिवेश करना, उनके बूते की बात नहीं रह गयी थी। यह पूंजी निवेश अब राष्ट्रीकरण के जरिये सरकार को करना था। विभिन्न करों के जरिये सरकारी खजाने में जमा जनता के धन और पेट काटकर छोटी–मोटी बचतों के जरिये बैंकों में जमा जनता की मेहनत की पूंजी को राष्ट्रीकरण के नाम पर कोयला उद्योग में पूंजीनिवेश किया गया।

यह राष्ट्रीकरण निजी क्षेत्र के पूंजीपतियों की मदद के लिए और समूचे पूंजीवादी तंत्र के ठहराव को, जिसके चंगुल में उस समय तक वह आ चुकी थी, तोड़ने के लिए किया गया था। इस सच्चाई के बारे में अब किसी भ्रम की गुंजाइश नहीं है। क्योंकि जिन तर्कों के आधार पर राष्ट्रीकरण किया गया था आज उससे एकदम उलट तर्कों के आधार पर एक बार फिर निजीकरण किया जा रहा है निजी क्षेत्र को सौंपे जाने वाले सभी सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों की ही तरह कोयला उद्योग के बारे में भी सरकार वही तर्क दे रही है कि इस उद्योग में घाटा हो रहा है और इसके लिए जरूरी पूंजीनिवेश करने में सरकार अक्षम है क्योंकि उसका खजाना खाली है। इसलिए यह काम अब देशी–विदेशी निजी

अब तक राष्ट्रीकरण के धुरन्धर हिमायती माने जाते रहे हैं। हालांकि सच्चाई यह है कि तीन दशकों के राष्ट्रीकरण के दौर ने इस वास्तविक लक्ष्य को उस हद तक पूरा कर लिया है जिस हद तक वह पूरा हो सकता था। N.P. कोयला उद्योग के राष्ट्रीकरण के बाद फर्क सिर्फ यह पड़ा था कि निजी मालिकों के मैनेजरों का स्थान सरकारी नौकरशाहों ने ले लिया था और मज़दूरों के संघर्षों के दबाव में उनकी मज़दूरी आदि में एक हद तक बढ़ोत्तरी हुई थी। सरकारी नौकरशाहों और निजी मालिकों के मैनेजरों के काम में कोई बुनियादी फर्क नहीं था। जो फर्क था वह सिर्फ इतना ही कि निजी मालिकाने में मैनेजर को सिर्फ अपने मालिक का मुनाफा बढ़ाने के लिए मज़दूरों पर सवारी गांठनी होती थी तो सरकारी नौकरशाह समूचे कोयला उत्पादन को समूचे पूंजीपति वर्ग की जरूरतों को पूरा करने के काम को व्यवस्थित करने के लिए मज़दूरों पर चढ़े रहते थे। मजदूर और प्रबन्धन के रिश्ते में और उत्पादन के वितरण के मामले में पहले जैसी ही स्थिति थी। यानी उत्पादन के सम्बन्धों में कोई गुणात्मक बदलाव नहीं हुआ था। यह हो भी नहीं सकता था क्योंकि जब तक राज्यसत्ता पूंजीपति वर्ग के हाथ में है इसमें किसी गुणात्मक बदलाव की बात वही लोग करते है जो मजदूर वर्ग को सुधारवादी विभ्रमों में उलझाये रखना चाहते हैं या सीधे–सीधे मजदूर वर्ग को धोखा देना चाहते है। जिन लोगों ने कोयला उद्योग के राष्ट्रीकरण को समाजवादी कदमों का नाम दिया था वे सभी यही कर रहे थे और आज जो लोग निजीकरण का विरोध सिर्फ पुराने राष्ट्रीकरण को बहाल करने की जमीन पर कर रहे हैं वे भी यही कर रहे हैं।

सच बात तो यह है कि राष्ट्रीकृत कोयला उद्योग की नौकरशाही को जो काम करना था, उसने वह काम बखूबी किया। उसे पूंजी के मुनाफे के हित में कोयले के उत्पादन और वितरण की व्यवस्था करनी थी जो उसने किया। डाकुओं की लूटी हुई सम्पत्ति की देखभाल या व्यवस्थित करने का काम करने वाले व्यक्ति से भला ईमानदारी की कैसे उम्मीद । सो, राष्ट्रीकृत कोयला उद्योग की नौकरशाही ने अवैध लूट खसोट के हजारों रास्ते बना लिये और पूंजीपतियों को मालामाल करने के साथ ही खुद मालामाल होते जाना ही उनका प्रमुख काम था। ऐसे में खानों की सुरक्षा के इन्तजाम और मज़दूरों की जिन्दगी की भला किसे परवाह ? आज कोयला उद्योग को जो भी तथाकथित घाटा है वह नौकरशाही की इसी लूट खसोट की बदौलत है, न कि मज़दूरों की बढ़ी हुई तनख्वाहों की बदौलत जैसा कि सरकार और उसके भाड़े के विशेषज्ञ सिद्ध करने में लगे हुए है। महज एक–दो आंकड़े ही इस फरेब को बेनकाब करने के लिए काफी हैं।

1974–75 में भारत कोकिंग कोल लि0 में जब कुल 180560 मज़दूर काम करते थे तो कुल 17.4 मीट्रिक टन कोयला पैदा करते थे, लेकिन 1994–95 में जब मज़दूरों की संख्या घटकर सिर्फ 149972 रह गयी तो कोयले का उत्पादन बढ़कर 28. 74 मीट्रिक टन हो चुका था। साफ है कि मज़दूरों की संख्या घटने के बाद भी उत्पादन बढ़ा है। एक दूसरा उदाहरण लीजिए। 1975 में एक कोयला मज़दूर की औसत मज़दूरी सिर्फ 12 रुपये 50 पैसे थी जो 1996 में बढ़कर लगभग रु0 142.00 हो गयी, यानी लगभग 11 गुना बढ़ोत्तरी हुई। लेकिन इसी अवधि में कोयले की कीमत रु0 47.50 से बढ़कर रू0 700.00 हो गयी, यानी, लगभग 16 गुना बढ़ोत्तरी हुई। स्पष्ट है कि मज़दूरी के मुकाबले कोयले की कीमत बढ़ने की दर लगभग पांच गुनी अधिक है। सोचने की बात है कि इस अवधि में जब कोयले के उत्पादन, उत्पादन दर और कीमत में बढ़ोत्तरी हो रही है तथा मज़दूरी में बढ़ोत्तरी की दर भी कम है तो फिर घाटा हुआ कहां से ? जाहिर है कि नौकरशाही की लूटखसोट और पूंजीवादी उत्पादन की अराजकता ही इसके लिए जिम्मेदार है।

साफ है कि **कोयला उद्योग का फिर से निजीकरण करने के पीछे भी वही पुराना मकसद काम कर रहा है पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के संकटों को दूर करना। इसी संकट को दूर करने के लिए राष्ट्रीकरण किया गया था और नये रूप में प्रकट हुए संकट को दूर करने के लिए राष्ट्रीकरण का नकाब उतार कर नये सिरे से निजीकरण की तैयारी हो रही है।**

जिस तरह से राष्ट्रीकरण के समय निजीकरण के नुकसान गिनाए गये थे, उसी तरह आज जब निजीकरण करना है तो राष्ट्रीकरण के नुकसान गिनाए जा रहे है। कोयला उद्योग के राष्ट्रीकरण के समय इसके शिल्पी माने जाने वाले कुमारमंगलम ने निजी क्षेत्र के कोयला खदानों की स्थिति का वर्णन इन शब्दों में किया था; *"निजी नियोक्ता (खदान मालिक) श्रम के मामलों में कई तरह के कदाचार में लिप्त रहते थे। मज़दूरी में बड़े पैमाने पर अवैध कटौती आम बात थी। कम मज़दूरी देने और भविष्य निधि के रिकॉर्ड में हेराफेरी के अलावा भविष्य निधि जमा करने के मामले में भी वे घलपेबाजी करते थे। इन कदाचारों में सबसे ऊपर था कोलफील्ड्स भर्ती संगठन द्वारा कोयला खदान उद्योग में बंधुआ मज़दूरी की प्रथा लागू करना।*

देश में कोयला उद्योग के राष्ट्रीकरण के पाले निजी खदान मालिको के अधीन मज़दूरों की जिन्दगी के यही हालात थे। यह सही है कि राष्ट्रीकरण के बाद भी मज़दूर सरकारी मैनेजरों–अफसरों, ट्रेड यूनियन दलालों के चंगुल में फंसे हुए थे, और खानों की सुरक्षा व्यवस्था में कोई गुणात्मक बदलाव नहीं आया था, लेकिन फिर भी लम्बे संघर्षों की बदौलत एक हद तक रोजगार सुरक्षा और खान–सुरक्षा के उपाय हुए थे। हालांकि हमें भूलना न होगा कि चासनाला, गजलीटांड न्यू कोंडा, और बागडिगी खान दुर्घटनाएं सबसे राष्ट्रीकृत कोयला उद्योगों में ही हुई हैं। आज भी हालत यह है

(शेष पृष्ठ तीन पर)

पंजाब के भट्ठा मज़दूरों के उत्पीड़न और लूट की दर्दनाक दास्तान

सही लाइन पर संगठित करने की जरुरत

(अगस्त 2001 अंक में छपी रिपोर्ट का अगला अंश)

नया आर्थिक हमला बनाम भट्ठा मज़दूर

साम्राज्यवादियों से साठ–गाँठकर भारतीय हुक्मरानों द्वारा मेहनतकश लोगों पर शुरू किये नये आर्थिक हमले से भट्ठा मजदूरों के लिये हालात और भी बदतर हो रहे हैं। नई आर्थिक तथा औद्योगिक नीतियां पहले से ही संकटग्रस्त कृषि अर्थव्यवस्था के संकट को और भी गहरा बना रही हैं और छोटे तथा गरीब किसानों के कंगालीकरण को तेज कर रही हैं और इस तरह ग्रामीण भूमिहीन और बेरोजगारों की फौज में इजाफा कर रही है। दूसरी ओर उद्योगों के आधुनिकीकरण सरकारी क्षेत्र के उद्यमों के निजीकरण तथा छोटे उद्योगों की तबाही से औद्योगिक क्षेत्र में मज़दूरों की बड़े पैमाने पर छंटनी हो रही है, मज़दूरों को बेरोजगारों की कतारों में धकेला जा रहा है। इस तरह बेरोजगारों की फौज में होने वाली बढ़ोत्तरी मज़दूरों के लिये, रोजगार की पहले से ही मौजूद अनिश्चितता और असुरक्षा को बढ़ा रही है और उन पर मालिकों की ओर से ननमानी कम मजदूरी तथा दबाव वाले हालातों में काम करने के लिये और जोर डाला जा रहा है।

इस नये आर्थिक हमले के कारण तेजी से बढ़ रही महंगाई मज़दूरों की पहले से ही कम मज़दूरी को और घटाने का कारण बन रही है। सरकार की ओर से लोगों को प्राप्त छोटी–मोटी स्वास्थ्य सहूलियतों की कटौती से लोगों को प्राप्त छोटी–मोटीइन मज़दूरों पर शिकंजा और कसा जा रहा है। पहले बीमारी की हालत में भट्ठे के आसपास पड़ने वाली सरकारी डिस्पेंसरी या अस्पताल से अपेक्षाकृत किफायती इलाज होने की गुजाइंश मौजूद थी जो जनविरोधी सरकारी नीतियों के चलते सिकुड़ रही है।सस्ते राशन के रूप में आम लोगों को मिलने वाली सब्सिडी को छीनने के लिए सरकार द्वारा उठाये जा रहे कदम मेहनतकश लोगों के लिये इस सुविधा को बेअसर तथा बेमतलब बना रहे है। इसी तरह , स्थानीय मज़दूरों का एक छोटा हिस्सा अपने बच्चों को पढ़ाने की आशा बांधे हुए था लेकिन शिक्षा के निजीकरण तथा व्यवसायीकरण से मंहगी हो रही शिक्षा ने मजदूरों की उन आशाओं पर भी पानी फेर दिया है।

लुटेरे हुक्मरानों द्वारा मेहनतकशों पर बोला गया यह नया आर्थिक हमला भट्ठा मजदूरों की जिन्दगी को भी बुरी तरह प्रभावित कर रहा है। उनके जीवन की जरूरी आवश्यकताओं को पूरा करने के हिसाब से पहले से ही तंग उनकी जेब पर और दबाव बन रहा है। नतीजे के तौर पर इन मज़दूरों को और अधिक कर्ज लेने, तथा भट्ठा मालिकों के जुल्म के नीचे दबाये रखने के लिये मौका मिल रहा है।

आर्थिक हमले को बेरोकटोक आगे बढ़ाने के लिये हुक्मरानों ने मज़दूरों के ट्रेड यूनियन अधिकारों को छीनने का रास्ता अपनाया है। मेहनतकशों को कुछ सुविधायें देकर बहलाने में असमर्थ हो चुका शासक वर्ग आम जनता की बुनियादी मांगों से पूरी तरह मुँह मोड़ रहा है उनके जायज संघर्षों को तोड़ने और कुचलने का रास्ता खुल्लमखुल्ला अपनाया जा रहा है। आने वाले समय में सरकारी तंत्र का बरदहस्त प्राप्त भट्ठा मालिकों मज़दूरों पर अपनी लूट का शिकंजा और अधिक कसते जायेंगे। असंगठित हिस्से को अपनी अधीनता में बनाये रखने और संगठित हो रहे हिस्से को–सबक सिखाने के लिये दमनकारी हथकंडों पर निर्भरता बढ़ती ही जानी है।

भट्ठा मज़दूरों के मामले में बेरहम लूट तथा उत्पीड़न एक दूसरे के साथ–साथ चलते हैं। इनको एक दूसरे से अलग करके नहीं देखा जा सकता। धौंस तथा उत्पीड़न मजदूरों की अंधी लूट, मुआफिक हालात मुहैया कराती है जिनमें धौंस तथा उत्पीड़न बरकरार रहे। भट्ठा मलिकों के डर से मजदूर अपनी मेहनत का वाजिब मेहनताना हासिल करने के लिये आपसी समझदारी कायम करने तथा संगठित होने की राह पकड़ने की हिम्मत नहीं कर पाते। इसलिए, इस लूट तथा उत्पीड़न के खिलाफ संघर्ष आपस में जुड़ा हुआ कार्यभार है। मज़दूरों की अपनी मेहनत के जायज मूल्य प्राप्त करने की लड़ाई महज आर्थिक रियायतें हासिल करने की लड़ाई नहीं है, बल्कि यह मालिकों के उत्पीड़न तथा धौंस को चुनौती देने की भी लड़ाई है। यह भट्ठा मालिकों द्वारा मज़दूरों के खून–पसीने की कमाई में से जबरन हथियाये गये हिस्से पर अपना हक जतलाने की लड़ाई है नहीं, वरन् यह प्रालिकों की धौंस तथा जुल्म के मुकाबले में अपने सामूहिक शक्ति प्रदर्शन द्वारा मालिकों के दमनकारी प्रभुत्व को तोड़ने की लड़ाई भी है।

पेशे के हिसाब से, भले ही भट्ठा मज़दूरों का संगठन एक ट्रेड यूनियन किस्म का संगठन है, परन्तु इन मजदूरों की पृष्ठभूमि तथा पेशे की विशेषता के कारण इनका एक औद्योगिक मज़दूर संगठन के मुकाबले देहाती क्षेत्र के क्रान्तिकारी आन्दोलन के साथ नजदीकी तथा सीधा रिश्ता बनता है। एक तो ये मजदूर गरीब किसान तथा खेत मज़दूरों में से ही आते हैं दूसरे ये छह महीने भट्ठों पर काम करते हैं और भट्ठे बंद रहने पर ये फिर छह महीने के लिये भूमिहीन तथा बेरोजगार देहाती मज़दूर बन जाते है। इस तरह इनके देहाती मजदूर तथा औद्योगिक मजदूर होने का दोहरा लक्षण बरकरार रहता है।इनका यह दोहरा लक्षण देहाती आर्थिक–सामाजिक जीवन में इनके नजदीकी तथा सीधे सरोकारों को बनाये रखता है।

सही एवं जनवादी लाइन पर संगठित करो

जीवकोपार्जन के संसाधनों से वंचित लूट तथा उत्पीड़न के सताये भट्ठा मजदूर अपने ऊपर होने वाले अन्याय गैरबराबरी तथा उत्पीड़न के खिलाफ गुस्से से भरे पड़े हैं। उनके मन में इस नरक जैसी जिन्दगी से मुक्ति पाने की प्रबल इच्छा है। इस गुस्से तथा इच्छा को सही रास्ते की तलाश है। यह स्थिति एक सकारात्मक पहलू हैं सही तथा जनवादी लाइन पर इन मजदूरों को संगठित करने के लिये कोशिशें करने से ही उनके वर्गीय गुस्से तथा नफरत को एक विशाल, मजबूत तथा लड़ाकू जन संगठन में ढालने की शुरूआत की जा सकती है। ऐसे संगठन की शुरुआत के लिये नीचे दी गई बातें काबिलेगौर है:

1) लूट तथा उत्पीड़न के तत्काल सामने उपस्थित रूपों के खिलाफ मजदूरों को जागृत तथा संगठित करने के काम के दौरान उनके भीतर सामूहिक शक्ति में भरोसे का अहसास जगाने के लिये प्रयत्न करने की जरूरत है। उनको लूट तथा उत्पीड़न के खिलाफ जगाना तथा सामूहिक संघर्ष में उतारना है। मालिकों, पुलिस अधिकारियों तथा सरकार के खिलाफ एक सामूहिक जद्दोजहद को अमल प्रदान करने से मज़दूरों के अंदर से हीनभावना तथा बाहर से स्थापित नेताओं पर निर्भरता के अहसास को खारिज किया जा सकता है। उनके भीतर यह अहसास गहरा किया जा सकता है, कि यह सिर्फ और सिर्फ उनकी एकजुट सामूहिक ताकत ही है, जिसके बल पर ये बेरहम लूट से राहत प्राप्त कर सकते हैं। अंत में, इस लूट तथा उत्पीड़न से मुक्ति की राह पर आगे बढ़ सकते हैं।

2) संगठन के ताने–बाने के निर्माण के लिये अलग–अलग नेतृत्वकारी संस्तरों के निर्माण पर जोर देने की जरूरत है। असल में, संघर्ष की कार्रवाईयों से गुजरकर ही नेतृत्वकारी संस्तरों की परख होती है। उनके शिक्षण–प्रशिक्षण की प्रक्रिया आगे बढ़ती है तथा वह मजदूरों के विश्वास के पात्र बनते है। पिछले व्यवहारिक कार्य के आधार पर मज़दूरों द्वारा चुने जाने के बाद अगुवा टीमें संगठन तथा संघर्ष के क्रियाकलाप को कैसे चलाती है– यह उनके विकास में निर्णायक महत्व रखने वाला सवाल है। हर स्तर पर सामूहिक सोच–विचार से फैसले लेने, फैसले लागू करने के लिये सामूहिक जाँच–पड़ताल कर दुरुस्त तरीके से काम की अंजाम दिये बिना न तो अगुवा टीमों का विकास हो सकता है और न ही उनको मज़दूरों के समक्ष जवाबदेह बनाया जा सकता है। दरअसल मजबूत संगठन के ताने–बाने के निर्माण का मामला वास्तव में अगुवा टीमों के सामूहिक विवेक एवं इच्छाशक्ति में, अगुवा टीमों में मज़दूर समूहों के समक्ष जवाबदेह होने तथा इस तरह संगठन को चलाने में मजदूरों की जनवादी भागीदारी का मामला है।

3) "एक ट्रेड एक संगठन" की व्यावहारिक तथा सही समझ के मुताबिक ऐसे मजदूर संगठन के निर्माण के लिये प्रयत्न करना, जो इकाई के स्तर पर ज्यादा मज़दूरों को अपने घेरे में लेता हो, इसलिये मजदूर संगठन को बाहर से बने बनाये नेताओं या किसी विशेष राजनीतिक पार्टी के साथ बांधने का पुरजोर विरोध किया जाना चाहिए। मजदूर संगठन को घोषित या अघोषित तौर पर राजनीतिक पार्टी का विंग बनाकर चलाने की कोशिशों का विरोध करते हुए, मजदूरों को यह दिखाया जाये कि किस तरह उनके जनसंगठन को किसी राजनीतिक पार्टी की पूंछ बनाने से मजदूरों की विशाल सामूहिक एकता तथा एकजुट संगठन के निर्माण को नुकसान पहुंचता है। इससे आगे यह मेहनतकश जनता के अलग–अलग हिस्सों की आपसी एकता तथा एकजुट संघर्षों के निर्माण में भी नुकसान का कारण बनता है ऐसा करना मजदूरों की सामूहिक रज़ा की घोर अवहेलना है, ऐसा करना मजदूरों की अनभिज्ञता तथा कुछ नेताओं पर बनी निर्भरता का फायदा लेकर इन नेताओं की मनमरजी को समूह पर थोपना है।

ऊपर दिये गये तीन नुक्ते मजदूर संगठन के जनवादी लाइन पर निर्माण तथा विकास के लिये बुनियादी महत्व रखते हैं। इस रोशनी में चलकर ही मजदूरों की आशाओं, उमंगों तथा उनकी जनवादी इच्छा को दर्ज करता हुआ एक लड़ाकू, मजबूत, विशाल जनाधार वाला संगठन खड़ा करने की शुरुआत की जा सकती है तथा इन मज़दूरों के आन्दोलन को क्रान्तिकारी दिशा में मोड़ने की पहलकदमी की जा सकती है।

(पंजाबी पत्रिका 'सुर्ख रेखा' में छपी रिपोर्ट के आधार पर)

सुखविंदर

अन्याय, असमानता, शोषण-दमन के विरुद्ध

विद्रोह न्यायसंगत है!

विद्रोह हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है।

विद्रोह करो!

विद्रोह से क्रान्ति की ओर आगे बढ़ो!

हमें वर्ग संघर्ष और दो लाइनों के संघर्ष की दीर्घकालिक प्रकृति को पूरी तरह पहचानना चाहिए।

पार्टी की बुनियादी कार्यदिशा का अनुसरण करने के लिए हमें समाजवाद के ऐतिहासिक कालखण्ड के दौरान वर्ग– संघर्ष की दीर्घकालिक प्रकृति को समझना चाहिए, स्वयं को इसके सारे विभिन्न पहलुओं के लिए मानसिक रूप से तैयार करना चाहिए और एक दीर्घकालिक संघर्ष करने के विचार को आत्मसात करना चाहिए।

लेनिन ने बताया है: **"पूंजीवाद से कम्युनिज़्म तक का संक्रमण एक समूचे ऐतिहासिक युग का प्रतिनिधित्व करता है। जब तक इस युग की समाप्ति नहीं हो जाती तब तक शोषक निरपवाद रूप से पुर्नस्थापना की उम्मीद पालते हैं, और यह उम्मीद के प्रयासों में बदल जाती है।"** (लेनिन, **सर्वहारा क्रान्ति और गद्दार का काऊत्स्की**, विदेशी भाषा प्रकाशन गृह, पीकिंग, 1965, प्र0 35) समाजवादी समाज एक पर्याप्त लम्बे ऐतिहासिक कालखण्ड में अस्तित्वमान रहता है और इस दौरान सर्वहारा वर्ग और बुर्जुआ वर्ग के बीच संघर्ष चलता रहता है। यह संघर्ष तब तक चलता रहेगा जब तक कि वर्गों का पूरी तरह उन्मूलन नही हो जाता। हमारी राजसत्ता की स्थापना के बाद से वर्ग संघर्ष और दो लाइनों के बीच के संघर्ष की वास्तविकताओं ने हमें यह सिखाया है कि हर बार कुछ वर्षों के अन्तराल पर वर्ग शत्रु मंच पर पुनः प्रकट होते रहते हैं। हालांकि उन्हें भीषण रूप से और बार–बार हारों का सामना करना पड़ा है। और उन्हे निरंतर एवं शर्मनाक धक्के लगे है, फिर भी यह उनके लिए असंभव ही है कि वे सिर उठाते रहना बन्द कर दें यह उनकी वर्ग प्रकृति से निर्धारित होता है। पेड़ तो शांत रहना चाहेगा, लेकिन हवा थोड़े ही रूकेगी। वर्ग शत्रु हमेशा सर्वहारा की चुनौती में खड़े होते रहेंगे– यह मनुष्य की इच्छा से स्वतंत्र एक वस्तुगत नियम है। इसलिए हमें यह कभी नही सोचना चाहिए कि चूँकि हम संघर्ष में कुछ जीतें हासिल कर चुके हैं इसलिए हम अपनी निगरानी ढीली कर सकते हैं और संतोषपूर्वक आराम कर सकते है। इसके उल्टे हमें यह साफ तौर पर समझना चाहिए कि अगर हमने वर्ग–शत्रु के चन्द हमलों का जवाब दे दिया है, तो इसका यह मतलब नहीं है कि समूचा प्रतिक्रियावादी वर्ग समाप्त हो गया। न ही हमें यह सोचना चाहिए कि, चूँकि दो लाइनों के संघर्ष में हमने कुछ जीतें हासिल की है तो भविष्य में कोई संघर्ष नहीं होगा। इन संघर्षों की दीर्घकालिक और जटिल प्रकृति को दृढ़ता के साथ आत्मसात कर और समाजवाद के युग में वर्ग संघर्ष के नियमों को समझकर ही हम पार्टी की बुनियादी कार्यदिशा लागू कर सकेंगे और उसकी रक्षा कर सकेंगे।

अध्यक्ष माओ ने कहा है: **"पार्टी के भीतर अलग-अलग प्रकार के विचारों के बीच विरोध और संघर्ष लगातार होते रहते हैं। यह पार्टी के अंदर वर्गों के बीच के और समाज में नए और पुराने के बीच के अंतरविरोधों का प्रतिबिम्ब होता है।"** (माओ त्से तुङ; संकलित रचनाएं, खण्ड–I, "अन्तरविरोध के बारे में") समाज में वर्ग –संघर्ष का पार्टी के भीतर अपरिहार्य रूप से प्रतिबिम्बन होता है और यह पार्टी के भीतर घनीभूत रूप में, दो लाइनों के संघर्ष के रूप में दिखायी देता है–यह भी एक वस्तुगत नियम है। समाज में वर्ग–संघर्ष के पार्टी के भीतर प्रतिबिम्बन में कोई शक इसलिए नहीं है क्योंकि, पार्टी शून्य में नहीं रहती, बल्कि वह एक ऐसे समाज में अस्तित्वमान है जिसमें वर्ग हैं, और बुर्जुआ विचारधारा, पुरानी आदतों की ताकत और संशोधनवादी विचारों की अंतरराष्ट्रीय रुझानों के लिए हमारी पार्टी की जैविक संरचना को प्रभावित और दूषित करना संभव है। इसके अलावा साम्राज्यवाद और सामाजिक साम्राज्यवाद सर्वहारा अधिनायकत्व के हमारे राज्य को उखाड़ फेंकने के लिए किए जाने वाले अपने प्रयासों में हर संभव रास्ते का इस्तेमाल करते हैं, और इसलिए वे हमारी पार्टी में अपने एजेण्ट घुसाने का हर तरीका अपनाते हैं। यह हमेशा सम्भव है कि हमारी पार्टी में लोग स्वयं को शत्रु द्वारा भ्रष्ट हो जाने दें, स्वयं को वर्ग-शत्रु की एजेण्ट हो जाने की हद तक पतित हो जाने दें। दो लाइनों के दस बड़े वे सभी संघर्ष, जिनसे होकर हमारी पार्टी अपने 50 सालों के इतिहास में गुजरी है, पार्टी के भीतर राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर होने वाले वर्ग–संघर्ष के प्रतिबिम्बन ही रहे हैं। नव जनवाद के युग में भी ऐसा ही होता रहा है, और आज, समाजवाद के युग में भी ऐसा ही होता रहेगा। महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रांति के दौरान जब ल्यू शाओ–ची का गद्दार गिरोह नष्ट हो गया, लिन पियाओ का पार्टी –विरोधी गिरोह सर्वहारा वर्ग के साथ अपनी ताकत आजमाने के लिए आगे आया–यह हमारे देश में और विश्व में होने वाले गहन वर्ग संघर्ष का तीखा प्रकटीकरण था। लिन पियाओ के पार्टी–विरोधी गिरोह की धज्जियां उड़ाने में हमने जो महान विजय प्राप्त की वह हमारे अन्दरूनी और बाहरी, दोनों ही दुश्मनों पर एक भयंकर प्रहार सिद्ध हुई।

समाज में वर्ग–संघर्ष की दीर्घकालिक प्रकृति पार्टी में दो लाइनों के संघर्ष की दीर्घकालिक प्रकृति को निर्धारित करती है। जब तक वर्ग, वर्ग अंतरविरोध, और वर्ग–संघर्ष हैं, जब तक समाजवादी और पूंजीवादी मार्ग अस्तित्वमान है, पूंजीवादी पुनर्स्थापना का खतरा और साम्राज्यवाद तथा सामाजिक साम्राज्यवाद द्वारा विध्वंस और आक्रमण की आशंका मौजूद रहेगी, तब तक दो लाइनों का संघर्ष भी उन अंतरविरोधों का प्रतिबिम्बन ही है, चलता रहेगा। संभवतः यह संघर्ष स्वयं को अभी 10, 20 या 30 बार और प्रकट करेगा और मुमकिन है कि लिए पियाओ वांग मिंग, ल्यू श्याओ–ची, पेंग ते हुआई और काओ काङ जैसे लोग एक बाद फिर प्रकट होंगे– यह मानव की इच्छा से स्वतंत्र है। कुछ कॉमरेड पार्टी में दो लाइनों के महत्वपूर्ण संघर्ष के प्रकट होने से चकित हैं– मूलतः यह समाजवाद के काल के दौरान वर्ग संघर्ष और दो लाइनों के संघर्ष के दीर्घकालिक चरित्र की उनकी पर्याप्त समझदारी न होने का नतीजा है। वे यह नहीं समझते कि वर्ग संघर्ष का दीर्घकालिक चरित्र ज्वार के उतार और चढ़ाव की तरह स्वयं को प्रकट करता रहता है– कभी ऊपर, कभी नीचे। 'ऊपर' और "नीचे' केवल विभिन्न रूप हैं, जो वर्ग संघर्ष अख्तियार कर सकता है वे वर्ग–संघर्ष की उपस्थिति या अनुपस्थिति के भेद का प्रतिनिधित्व नहीं करते। इसी तरह "ज्वार का उतार और चढ़ाव" का मतलब 'अस्तित्वमान होना और लुप्त होना" नहीं है। वर्ग संघर्ष और दो लाइनों के संघर्ष की दीर्घकालिक प्रकृति को समझकर ही हम उन नियमों को समझ सकते हैं जो उनके उतार और चढ़ाव को, ज्वार और भाटा को, और घुमावों को नियंत्रित करते हैं। केवल तभी हम वर्ग संघर्ष और दो लाइनों के संघर्ष में पहल लेने की स्थिति में होंगे और उसके लिए पूरी तरह तैयार होंगे– वर्ग शत्रु चाहे जो भी भेस धरे– और तभी हम घटनाओं के विकास को समझने उन्हें निर्देशित करने और इस तरह क्रान्ति की विजय सुनिश्चित करने के काबिल होंगे।

क्रमशः

विशेष सामग्री
(आठवीं किश्त)
अध्याय - 4

पार्टी की बुनियादी समझदारी

पार्टी की बुनियादी कार्यदिशा

एक क्रांतिकारी पार्टी के बिना मज़दूर वर्ग क्रांति को कतई अंजाम नहीं दे सकता। लेनिन ने इस बात को बार-बार जोर देकर कहा था। स्तालिन और माओ ने भी बराबर इस बात पर जोर दिया और बीसवीं सदी की सभी सफल सर्वहारा क्रांतियों ने भी इसे सत्यापित किया।

लेनिन ने सर्वहारा वर्ग की क्रांतिकारी पार्टी के सांगठनिक उसूलों का निर्धारण किया और इसी फौलादी सांचे में बोल्शेविक पार्टी को ढाला। चीन की पार्टी भी बोल्शेविक पार्टी की ही उत्तराधिकारी थी। सर्वहारा सांस्कृतिक क्रांति के दौरान, समाजवादी समाज में वर्ग-संघर्ष का संचालन करते हुए माओ के नेतृत्व में चीन की पार्टी ने अन्य युगान्तरकारी सैद्धान्तिक उपलब्धियों के साथ-साथ लेनिनवादी सांगठनिक सिद्धान्तों को भी और आगे विकसित किया।

सोवियत संघ और चीन में पूंजीवाद की पुनर्स्थापना के लिये बुर्जुआ तत्वों ने सबसे पहले यही जरुरी समझा कि सर्वहारा वर्ग की पार्टी का चरित्र बदल दिया जाये। हमारे देश में भी संसदीय रास्ते की अनुगामी नामधारी कम्युनिस्ट पार्टियां मौजूद हैं। भारतीय मजदूर क्रांति को सफल बनाने के लिए भारत ने भी सर्वहारा वर्ग की एक सच्ची क्रांतिकारी पार्टी खड़ी करने का काम सर्वोपरि है।

इसके लिये बेहद जरुरी है कि मजदूर वर्ग यह जाने की असली और नकली कम्युनिस्ट पार्टी में क्या फर्क होता है और एक क्रांतिकारी पार्टी कैसे खड़ी की जानी चाहिए।

इसी उद्देश्य से, फरवरी, 2001 अंक से हमने एक बेहद जरुरी किताब 'पार्टी की बुनियादी समझदारी' के अध्यायों का किश्तों में प्रकाशन शुरु किया है। इस अंक में आठवीं किश्त दी जा रही है। यह किताब सांस्कृतिक क्रांति के दौरान पार्टी-कतारों और युवा पीढ़ी को शिक्षित करने के लिये तैयार की गयी श्रृंखला की एक कड़ी थी। चीन की कम्युनिस्ट पार्टी की दसवीं कांग्रेस (1973) में पार्टी के गतिशील क्रांतिकारी चरित्र को बनाये रखने के प्रश्न पर अहम सैद्धान्तिक चर्चा हुई थी। पार्टी का नया संविधान पारित किया गया था और संविधान पर एक महत्वपूर्ण रिपोर्ट प्रस्तुत की गयी थी। इसी नई रोशनी में यह पुस्तक एक सम्पादक मण्डल द्वारा तैयार की गयी थी। मार्च, 1974 में पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, शंघाई से इस पुस्तक के प्रथम संस्करण की 4,74,000 प्रतियां छपी। यह पुस्तक पहले चीनी भाषा से फ्रांसीसी भाषा में अनुदित हुई और 1976 में प्रकाशित हुई। फिर नार्मन बेथ्यून इंस्टीच्यूट, टोरेण्टो (कनाडा) ने इसका फ्रांसीसी से अंग्रेजी में अनुवाद कराया और 1976 में ही इसे प्रकाशित भी कर दिया। प्रस्तुत हिन्दी अनुवाद मूल पुस्तक के इसी अंग्रेजी संस्करण से किया गया है।

-सम्पादक

मज़दूर वर्ग के बीच निरन्तर और नियमित प्रचार कार्य एक बुनियादी कर्तव्य

व्ला0इ0 लेनिन

..... जनता के बीच अपने काम तथा प्रभाव को प्रखर और व्यापक बनाना सदा ही हमारा कर्तव्य है। जो सामाजिक–जनवादी ऐसा नहीं करता वह सामाजिक–जनवादी है ही नहीं। ऐसी किसी भी ब्रांच (शाखा) दल या मण्डल को, जो इस लक्ष्य को आगे बढ़ाने के लिए निरन्तर और नियमित रूप से काम नहीं करता, सामाजिक–जनवादी नहीं माना जा सकता। सर्वहारा वर्ग की एक विशिष्ट और स्वतंत्र पार्टी के रूप में बिल्कुल अलग अस्तित्व रखने में बहुत बड़ी हद तक पार्टी का उद्देश्य ही यह है कि जहाँ तक सम्भव हो वहाँ तक पूरे मजदूर वर्ग को सामाजिक –जनवादी समझदारी के स्तर तक ऊँचा उठाने के मार्क्सवादी कार्य को हमारे द्वारा निरन्तर और अविचल रूप से किया जाय। राजनीतिक परिस्थितियों के किन्हीं भी परिवर्तनों को, किन्ही भी राजनीतिक आंधियों को, इस आवश्यक कार्य के मार्ग में हम आड़े नहीं आने देते। इस कार्य के बिना राजनीतिक–गतिविधियाँ अनिवार्य रूप से भ्रष्ट होकर तीन–तिकड़म का (खेल का) रूप ले लेंगी, क्योंकि सर्वहारा वर्ग के लिए ये गतिविधियाँ केवल तभी और उसी हद तक वास्तव में महत्वपूर्ण होती हैं जब और जिस हद तक कि एक निश्चित वर्ग के जनसमुदायों को जगा कर वे खड़ा कर देती हैं, उसका ध्यान अपनी ओर आकर्षित करती हैं, और घटनाओं के निर्माण में सक्रिय तथा प्रमुख रूप से भाग लेने के लिए उसे लामबन्द करती हैं। जैसा कि हमने कहा, यह काम हमेशा जरूरी होता है। हर हार के बाद इस चीज की ओर हमें खास तौर से ध्यान देना चाहिए और उस पर जोर देना चाहिए–क्योंकि इस काम की कमजोरी हमेशा सर्वहारा वर्ग की पराजय का एक कारण होती है। इसी प्रकार प्रत्येक जीत के बाद भी इस काम की तरफ हमें लोगों का ध्यान दिलाना चाहिए, और इसके महत्व पर जोर देना चाहिए–क्योंकि ऐसा न करने से जीत मात्र एक दिखावटी जीत होगी, उस जीत के फलों का प्राप्त होना सुनिश्चित नहीं बनेगा, हमारे अन्तिम लक्ष्य की प्राप्ति के लिए किये जाने वाले महान संघर्ष के संदर्भ में उसका वास्तविक महत्व नगण्य होगा और, हो सकता है कि, वह एकदम खिलाफ ही हो (तब विशेष रूप से ऐसा ही होगा जब किसी आंशिक जीत के कारण हमारी सतर्कता ढीली पड़ जाय, गैरभरोसे के मित्रों–सहयोगियों के सम्बन्ध में हमारा अविश्वास भाव घट जाए, और दुश्मन पर दोबारा तथा और भी डट कर हमला करने के उचित क्षण को छोड़ने के लिए हम मजबूर हो जायें)।

लेकिन चूँकि जन–समुदायों के बीच अपने प्रभाव को गहरा और व्यापक बनाने का काम करना हमारे लिए हमेशा, हर जीत और हर हार के बाद, राजनीतिक शान्ति के समय और क्रान्ति के तूफानी दौरों में आवश्यक है, इसलिए–यदि हम इस बात का जोखिम मोल नही लेना चाहते कि हम लफ्फाजी के दलदल में फंस जायं तथा उन्नत और एक मात्र सच्चे क्रान्तिकारी वर्ग के लक्ष्यों को नीचे गिरा दें– तो इस काम के ऊपर जोर देने की बात को हमें किसी विशेष नारे का रूप नहीं दे देना चहिए, और न उसे लेकर किसी विशेष प्रवृत्ति की ही सृष्टि करनी चाहिए। सामाजिक–जनवादी पार्टी की राजनीतिक गतिविधियों में अध्यापन का एक तत्व रहता है, और हमेशा ही रहेगा। मजदूरों के पूरे के पूरे वर्ग को मानवजाति को हर प्रकार के उत्पीड़न से मुक्ति दिलाने वाले योद्धाओं की भूमिका अदा करने के लिए हमें शिक्षित करना चाहिए हमें इस वर्ग के सर्वाधिक पिछड़े, सर्वाधिक अविकसित सदस्यों के पास तक, उन लोगों के पास तक पहुंचाना सीखना चाहिए जो हमारे विज्ञान तथा जीवन–विज्ञान से सबसे कम प्रभावित हैं–जिससे कि हम उनके साथ बात कर सकें, उनके और नजदीक पहुँच सकें और, अपने सिद्धान्त को कोई जड़ सूत्र बनाये बिना, उनकी चेतना को लगातार और धैर्यपूर्वक सामाजिक–जनवादी चेतना के स्तर तक ऊँचा उठा सकें। सर्वहारा वर्ग के इन पिछड़े और अविकसित स्तरों के लोगों को हमें केवल किताबों के माध्यम से ही नहीं, बल्कि जीवन के लिए चलने वाले दैनन्दिन के संघर्ष में भाग लिंवा कर सिखलाना चाहिए।.हम फिर दोहराते है कि दैनन्दिन की इस सक्रियता में अध्यापन का एक तत्व रहता है। जो सामाजिक–जनवादी इस काम को अनदेखा करेगा वह सामाजिक–जनवादी ही नहीं रह जायगा। यह बात सही है। परन्तु, हममें से कुछ लोग इन दिनों अक्सर इस बात को भूल जाते है कि वह सामाजिक–जनवादी जो राजनीतिक कार्यो को अध्यापन कार्य की ही परिधि से सीमित कर देगा वह भी, यद्यपि दूसरे ही कारण से, सामाजिक–जनवादी नहीं जायगा; "अध्यापन " के इस "कार्य" को जो कोई भी एक विशेष नारे का रूप देने का, उसे "राजनीति" के मुकाबले में रखने का, उसकी बुनियाद पर एक विशेष प्रवृत्ति की सृष्टि करने का, और, इस नारे के अर्न्तगत, सामाजिक–जनवाद के "राजनीतिज्ञों" के विरुद्ध जनता से अपील करने का विचार करेगा–वह तुरन्त, तथा अपरिहार्य रूप से, नीचे गिर कर लफ्फाजी के स्तर पर पहुंच जायेगा।

जून 1905 मे लिखित
सम्पूर्ण ग्रंथावली, खण्ड 8,पृ0 452–55,
राजनीति को अध्यापन शास्त्र के साथ न गड़बड़ाया जाये

(पृष्ठ नौ से आगे)

'बदबू' कहानी का शेष

आकर देखा छोटे साहब की गाड़ी के पिस्टन अंदर बदले गये हैं, खुद मैने अपनी आखों से देखा,' पहले वाले व्यक्ति ने आवेश में आकर कहा।

'चुप , दूसरे नौजवान ने फुसफुसा कर उसे टोक दिया,' टेलीफून जा रहा है।'

एक चुस्त चालाक आदमी उनके साथ–साथ चलने लगा था। तभी दोनों जवानों ने अपनी बीवियों के बारे में बातें शुरू कर दीं।

इस घटना के बाद कुछ लोगों की दबी–दबी सहानुभूति पा जाने पर उसे ऐसा अनुभव हुआ जैसे किसी अँधेरे, बंद तहखाने में प्रकाश की हल्की किरण का आसरा उसे मिल गया हो। पर सभी कामगरों की आँखों में सहानुभूति का यह भाव नहीं था। अनेक सहकर्मी इस घटना के पश्चात उसके प्रति रूखा व्यवहार करने लगे थे, और कुछ ऐसी भी आखें थीं जिनमें अचानक ही ईर्ष्या और उपेक्षा की भावना उभर आई थी। ऐसी ही एक जोड़ा आँखें एक दिन छुट्टी के बाद मार्ग में बहुत दूर तक उसका पीछा करती रही थीं। उसे ऐसा लगा जैसे साथ में चलने वाला वह व्यक्ति उससे कुछ कहने के लिए अकुला रहा है। उन दोनों के साथ–साथ मजदूरों का झुंड हाथों में थैला या टिफिन का खाली डिब्बा लटकाए चला जा रहा था। एक नई उम्र के शरारती कारीगर बीरू ने अपने से आगे चलने वाले अधेड़ उम्र के लालमणि के कुर्ते का पिछला हिस्सा उठाकर सिगरेट के खाली पैकेट फँसा दिया था, पीछे चलने वाली भीड़ लालमणि के कुर्ते की पूँछनुमा बनावट और इस संबंध में उसकी अज्ञानता का आनंद ले रही थी। तभी किसी ने उसके साथ चलने वाले आदमी को लक्ष्य कर आवाज दी–

'नेताजी , जैराम जी की!'

साथ चलने वाले व्यक्ति की ईर्ष्यालु दृष्टि का रहस्य उसकी समझ में आ गया। उत्तर में 'नेता' ने व्यंग्यपूर्ण स्वर में कहा', काहे शर्मिदा करते हो भाई, अब तो कारखाने में बड़े–बड़े नेता पैदा हो गये है। हम किस खेत के मूली है।!'

ज़िस बात की उसे आशंका थी वही हुआ। शायद रात की सारी रिपोर्ट चीफ साहब के पास पहुँच गई थी। चपरासी ने साहब के कमरे का द्वार खोलकर उसे उनके सामने पहुँचा दिया, फिर द्वार पूर्ववत बंद हो गया। साहब ने अपने हाथों से स्टूल उठाकर बैठने के लिए आगे बढ़ा दिया और फिर नरमी से बोले,"हम तुम्हारी भलाई के लिए ही कह रहे हैं। जमाना बुरा है। बाल–बच्चे वाले आदमी को ऐसी बातों में नहीं पड़ना चाहिए।

अपने कथन की प्रतिक्रिया जानने के लिए साहब ने उसकी ओर देखा। उनके हाथ मेरे पर बिछे कपड़े की सलवटों को सहलाने में व्यस्त थे। साहब की ओर देखकर इस प्रश्न का उत्तर अनकी आँखों में ही झाँक पाने का उसका मन हुआ। परंतु काले चश्मे के अपारदर्शी शीशों के पीछे छिपी आँखों के स्थान पर केवल अंधकार घिरा हुआ था।

'ऐसा कोई खतरनाक काम तो मैने नहीं किया साहब,' उसने पेपरवेट के फूलों पर अपनी नजर जमाकरं उत्तर दिया।

'हम जानते हैं, सब कुछ जानते हैं। कल रात तुम्हारे घर मीटिंग हुई थी या नहीं? मानसिक उत्तेजना के कारण साहब दोनों हाथों की अँगुलियों को आपस में उलझाते हुए बोले।

'दो–चार यार दोस्त बैठने के लिये आ जायें तो उसे मीटिंग कौन कहेगा साहब? उसने बात का महत्व कम करने की कोशिश में मुस्कराने का अभिनय किया।

'सुनो जवान! यार दोस्तों की महफिल में गप्पें होती है, ताश खेले जाते है, शराब पी जाती है; लेकिन स्कीमें नहीं बनतीं।' इस बार स्वर कुछ अधिक सधा हुआ था।

'साहब, लोगों को मकान की परेशानी है, छुट्टियों का ठीक हिसाब नहीं, छोटी–छोटी बातों पर जुर्माना हो जाता है। यहीं बातें आपसे अर्ज करनी थी। यही वहाँ भी सोच रहे थे। स्वर में दीनता थी परन्तु साहब के चेहरे पर टिकी हुई उसकी तीखी दृष्टि अनजान में ही जैसे इस अभिनय को झुठला रही थी।

'मै कौन होता हूँ, जो तुम लोग मुझसे यह कहने के लिए आते हो? मै भी तो भाई, तुम्ही लोगों की तरह एक छोटा–मोटा नौकर हूँ, अपनी दोनों हथेलियों को मेज पर फैलाकर साहब ने कृत्रिम मुस्कान का ऋण लौटा दिया और अपनी कुर्सी पर अधिक आश्वस्त होकर बैठ गए। उनके सामने बैठे हुए व्यक्ति को यह समझौता स्वीकार न हुआ। कृत्रिमता के आवरण को पूरी तरह उतार कर दृढ़ स्वर में वह बोला,' तो जो हमारी बात सुनेगा उसी से कहेंगे साहब!'

एकाएक साहब बौखला कर कुर्सी पर उछल पड़े,' तुम बाहर की पार्टियों के एजेन्ट हो, ऐसे लोग ही हड़ताल करवाते हैं। मै एक–एक को सीधा करवा दूँगा। मैं जानता हूँ तुम्हारे ग्रुट में कौन–कौन है। आइन्दा ऐसी–ऐसी बातें मैं नहीं सुनना चाहता।

वह चीफ के कमरे से निकल कर अपने काम पर लौटा तो मिस्त्री पास बैठाकर समझाने लगा,'इस दुनिया में सबसे मेल–जोल रखकर चलना पड़ता है। नदी किनारे की घास पानी के साथ थोड़ा झुक लेती है और फिर उठ खड़ी होती है। लेकिन बड़े–बड़े पेड़ धार के सामने अड़ते है और टूट जाते हैं। साहब ने तुम्हारी बदली कास्टिक टैंक पर कर दी है, बड़ा सख्त काम है, अब भी साहब को खुश कर सको तो बदली रुक सकती है।

उत्तर में उसने कुछ नहीं कहा। उठकर कास्टिक टैंक पर चला गया। टैंक पर काम करने वाले मजदूरों ने उसे देखकर भी अनदेखा कर दिया। उसे ऐसा लगा कि जैसे वे लोग जान–बूझकर उससे पृथक रहने का प्रयत्न कर रहे हों। पुराने पेंट और जंग लगे हुए सामान को कास्टिक में धोया जा रहा था। आगे बढ़कर उसने भी उन्हीं की तरह काम शुरु कर दिया। शाम तक काम का यही क्रम चलता रहा। घर लौटकर उसने अनुभव किया–हाथ–पैरों में विचित्र प्रकार की जलन हो रही थी।

घर पहुँचते– पहुँचते अँधेरा घिर गया था। हाथ–मुँह धोकर उसने जल्दी–जल्दी खाना खाया और फिर बच्चे को लेकर आँगन में झिलंगी चारपाई पर आ बैठा। सौंझ अत्यधिक उदास हो आई थी। बच्चे ने कुछ देर तक उससे खेलने का प्रयत्न किया, लेकिन पिता की ओर से विशेष प्रोत्साहन न पाने पर वह कब माँ के पास चला गया, इसका उसे ध्यान न रहा। जिनकी उसे प्रतीक्षा थी उनमें से कोई भी न आया था, केवल हरीराम ने आकर अब तक दो–तीन बीड़ियाँ फूँक ली थीं।

हरीराम की ओर से ही दो–तीन बार बातचीत शुरू करने का प्रयत्न किया जा चुका था, लेकिन उसके अटूट मौन के कारण हर बार वह प्रयत्न विफल सिद्ध हुआ था। इस बार फिर हरीराम ने ही बात छेड़ी–

'घनश्याम की तो बीवी बीमार हो गई, लेकिन मोहन, राधे, हनीफ, वगैरह किसी को

शेष पृष्ठ तीन पर

कहानी

बदबू

शेखर जोशी

एक साथी ने उसकी परेशानी का कारण भाँप लिया था, 'ऐसे नहीं उतरेगा मास्टर ! आओ, तेल में धो लो, कहकर उस साथी ने उसे अपने साथ चले आने को संकेत किया।

एक बड़े टब में घटिया किस्म का कैरोसीन तेल रखा हुआ था। दोनों ने अपने हाथों को कुहनी–कुहनी भर उसमें डुबाकर मला। अब हथेलियों ओर बाँहों में चिपटी सारी चिकनी कालिख धुल गई थी, परंतु उसे लगा जैसे दोनों बाँहों में अदृश्य चीटियाँ रेंग रही हों। कैरोसीन तेल की गंध के कारण उसका जी मिचला उठा। इस खीझ और गंध से मुक्ति पाने के लिए वह नल की ओर चल दिया।

अंतिम साइरन बज चुका था। पानी के प्रत्येक नल पर बीसियों कामगर घिरे हुए थे, कुछ लोग हाथों में साबुन मल रहे थे और शेष मल चुकने पर हाथों को पानी से धोने के लिए बारी की प्रतीक्षा कर रहे थे। उसे देखकर सबकी अजनबी निगाहें उसकी ओर लग गईं। एक–दो मजदूरों ने सौजन्य प्रदर्शन के लिए अपनी बारी आने से पहले ही उसे पानी लेने को बढ़ावा दिया। किंचित संकोच के बाद उसने आगे बढ़कर पानी ले लिया। यह संकोच स्वाभाविक था। अपनी बारी आने से पहले पानी लेने का प्रयत्न करने वालों को उत्साहित करने की इच्छा किसी के मन में न थी, यह वह दो क्षण पहले विभिन्न स्वरों में सुन चुका था।

परंतु उसे पानी लेते देखकर किसी ने आपत्ति नहीं की। एक बार हाथ अच्छी तरह धो लेने पर उसने उन्हें नाक तक ले जाकर सूंघा। कैरोसीन की गंध अभी छूटी नहीं थी। दुबारा साबुन से धो लेने पर भी उसे वैसी ही गंध का आभास हुआ, फिर एक बार और साबुन जेब से निकाल कर उसने हाथों में मलना शुरू कर दिया।

घासी रस ले–लेकर एक किस्सा सुनाने लगा और सारा समूह अपनी व्यस्तता भूलकर उसकी बात सुनता रहा–

एक गाँव के मेहतर की लौंडिया थी। उसकी शादी हुई शहर में। जैसा तुम जानो, गाँव के मेहतरों को तो कभी गंदा उठाने की जरूरत ही नहीं पड़ती। नई–नई शहर में गई तो दिन–रात नाक चढ़ा कर अपने खसम से कहा करे–बदबू आती है, बदबू आती है। मालिक क्या करता! उसकी खातिर पेशा तो छोड़ नहीं सकता था। धीरे–धीरे लौंडिया भी काम पर जाने लगी। साल–छः महीने के बाद मेहतर की सासू शहर देखने आई। रास्ते में ही हाथ में झाड़ू बाल्टी लिये बेटी मिल गई। माँ पहले तो लाड़ से बेटी से गले मिली और फिर नाक पर आँचल रख लिया।

बेटी ने पूछा,'ऐ अम्मा, नाक–मुँह क्यों बंद कर लिया?

माँ बोली, ' बेटी बदबू आती है।'

बेटी अचम्भे से बोली, कैसी बदबू ? मुझे तो कुछ भी नहीं मालूम देती।'

नल के इर्द–गिर्द घिरे हुए सभी कामगरों के थके चेहरों पर भी उसकी बात सुनकर हँसी खिल गई। घासी ने ही फिर बात को स्पष्ट किया, 'ये भाई भी अभी हाथ नाक पै ले जा–जा के सूँघ रहे थे तभी किस्सा याद आया। पहले–पहल हम भी ऐसे ही सूँघा करते करें थे। पर अब तो ससुरा पता ही नहीं लगता। कितना बार तो साबुन नहीं मिलता, ऐसे ही पोंछ–पांछकर रोटी खाने बैठ जाते है।

संकेत उसी की ओर था। परिहास के उत्तर में गम्भीर हो जाना उसे उचित न लगा। सभी की हँसी में उसने अपना योग भी दे दिया। परंन्तु घासी की बात पर उसे आश्चर्य हो रहा था। तेल की ऐसी तीखी दुर्गंध को साबुन से छुटाये बिना आदमी कैसे भला चैन से रह सकेगा। इसका उसे विश्वास ही नहीं हो रहा था।

कपड़े बदलकर वह लाइन में जा लगा। इकहरी पंक्ति के प्रारम्भ में हेड फोरमैन के साथ एक गोरखा सिपाही खड़ा था। प्रत्येक मजदूर अपनी रोटी का खाली डिब्बा खोलकर उसे दिखाता और फिर दोनों हाथ ऊँचे उठाकर तलाशी देने की मुद्रा में खड़ा हो जाता। गोरखा सर्चर मजदूर की छाती, कमर ओर जेबों को टटोलकर आगे बढ़ जाने का संकेत कर देता। जल्दी घर पहुँचने की इच्छा रखने वालों को पंक्ति की धीमी गति के कारण झुँझलाहट हो रही थी। इसी झुँझलाहट में कभी–कभी लोग पंक्ति में अपने से आगे व्यक्ति को ठेल देते बीच–बीच में मोटा फोरमैन उनकी इस जल्दबाजी को कोई भद्दी, अश्लील व्याख्या कर हँस देता था। उसे फोरमैन का यह व्यवहार अच्छा नहीं लगा। परंतु उसने सुना, पंक्ति में से ही कोई कह रहा था,'फोरमैन जी बड़े रंगीले आदमी हैं।' सम्मति प्रकट करने वाला एक अधेड़ उम्र का व्यक्ति था जो अब भी कृतज्ञतापूर्ण दृष्टि से फोरमैन की ओर देख रहा था कि जैसे फोरमैन ने यह मजाक करके उन पर बड़ी कृपा कर दी हो।

उसकी तलाशी देने की बारी आ गई थी। ठिगने सिपाही ने अपनी एडी उठाकर बड़ी कठिनाई से उसकी तलाशी ली। सिपाही के इस आयास को देखकर उसका मन हँसने को हुआ परंतु मन पर अवसाद की धुंध इतनी गहरी छा गई थी कि वह हँस न सका। बड़े फाटक से पहले फिर इकहरी पंक्ति बन गई थी। परंतु इस बार पंक्ति के परले सिरे पर खड़ा हुआ सिपाही तलाशी नहीं ले रहा था, वरन यह देखने के लिए खड़ा था कि कोई भी व्यक्ति कतघरे में आडी गिरी हुई लकड़ी को लाँघे बिना न चला जाय। अन्य सभी मजदूरों की भाँति वह भी आड़ी गिरी हुई लकड़ी को लाँघकर बाहर चला गया।पीछे मुड़कर उसने फिर एक बार कटघरे की ओर देखा–लोग अबभी एक–एक कर कूदते हुए चले आ रहे थे। इस उछल –कूद का प्रयोजन वह नहीं समझ पाया। गेट से बाहर निकलकर उसने अनुभव किया जैसे वह बंद कोठरी से निकलकर खुली हवा में चला आया हो।

'क्या आफत बना रखी है!' अनायास ही उसके मुँह से निकल गया।

अनजाने मे ही कहे गये ये शब्द साथ चलने वाले एक बुजुर्ग के कानों तक पहुँच गये थे। उन्होंने धीरे–से अपनी राय प्रकट की, नये आये लगते हो ? पहले–पहल ऐसा ही लगता है, धीरे–धीरे आदत सी पड़ जाएगी। आकाश की ओर अंगुली उठाकर उन्होने बात आगे बढाई, उस नीली छतरी वाले का शुक्र करो कि यहाँ काम मिल गया। अच्छे–भले पढे–लिखे लोग धक्के खाते फिरते हैं; हमारे पड़ोस का एक लड़का..... बुजुर्ग अपने अनुभव की पोटली खोलकर बहुत कुछ बिखेरना चाहते थे, लेकिन उसका मन उनकी बातों में नहीं लगा, कनखियों से उसने उनकी ओर देखा। उस ऊपर वाले के अहसान का बोझ उठाते–उठाते ही जैसे उनकी कमर टेढ़ी हो गई थी। वह चाल तेज कर आगे बढ़ गया।

रास्ते भर उसके दिमाग में वही सब–कुछ घूमता रहा जो वह दिन भर में देख–सुन चुका था। घासी और उस बुजुर्ग आदमी की बात याद आने पर वह सोचने लगा,' क्या सच ही एक दिन वह भी सब–कुछ सहने का आदी हो जायेगा और नीली छतरी वाले के अहसानों का बोझ उसकी कमर को भी वैसे ही झुका देगा।

कारखाने में यह उसका पहला दिन था।

फिर एक–एक कर कई दिन बीत गए। परंतु घुटन और अवसाद की छाया दिनोंदिन बोझिल होती गई।

शहर के बाहरी भाग में स्थित कारखाने की पहली सीटी पर प्रतिदिन कामगर लोग अपनी–अपनी गृहस्थी छोड़कर हाथों में रोटी–चबैना की पोटली या डिब्बा लटकाए, अपनी सुध–बुध खोकर तेज कदमों से कारखाने की ओर चले आते। दिन–भर कारखाने की खटर–पटर में मशीनों और औजारों से जूझकर थकी–लस्त देह वालों का यह काफिला सौंझ के धुंधलके में अपने घरों की ओर चल देता। सर्दी, गर्मी, बरसात में कभी भी इस क्रम में कोई बाधा न पड़ती।

कारखाने में अपने–अपने अड़े पर काम करते हुए लोगों को हर रोज सुबह से शाम तक एक ही स्थान में, उन्ही चिर–परिचित मुद्राओं में देखकर उसे ऐसा लगता जैसे वह वर्षों से उन्हें उसी स्थान पर इसी रूप में देखता आ रहा हो। इस नीरस जिंदगी मे कोई हलचल हो भी जाती तो उसका प्रभाव अधिक देर तक नहीं टिकता। तालाब में ठहरे हुए जल में कंकर फेंक देने पर जिस तरह क्षणिक हलचल होती है, वह प्रतिक्रिया वहां किसी नई घटना की होती। एक–दो दिन तक कारखाने में उस घटना की चर्चा रहती और फिर सब–कुछ पूर्ववत,शांत हो जाता । साथी कामगरों के चेहरों पर असहनीय कष्टों और दैन्य की एक गहरी छाप थी, जो आपस की बातचीत या हँसी–मजाक के क्षणों में भी स्पष्ट झलक पड़ती थी। किसी प्रकार की नवीनता के प्रति सबके मन में एक विचित्र शंका–भाव जड़ जमाये बैठा रहता। शायद यही कारण था कि अचानक ही एक छोटी–सी घटना के पश्चात उसके साथियों का व्यवहार उसके प्रति शंकालु हो उठा था।

यों घटना कुछ विशेष नहीं थी। उस दिन कारखाने में हर जगह बीड़ी का तूफान मचा हुआ था–

'अबे हद हो गई यार! साला बुधुन सुलगती बीड़ी निगल गया।'

'हम वहीं खड़े थे भाई ! साहब ने मुँह खुलवाया, मुँह में नहीं थी।'

'कमाल है! साले को सरकस में जाना चाहिए।'

चीफ साहब के आदेश पर सभी मजदूर एक स्थान पर एकत्रित हो गये थे। साहब के निकट ही बुद्धन सिर झुकाए खड़ा था। उपस्थित समूह को नसीहत देते हुए साहब ने बताया कि किस तरह उन्होंने पीछे से जाकर बुद्धन को कारखाने के अंदर बीड़ी पीते हुए पकड़ा ओर किस प्रकार चतुराई से उसने बीड़ी मुँह के अंदर ही डालकर गायब कर ली थी।

साहब बोले,' कारखाने में इतनी कीमती चीजें पड़ी रहती हैं, किसी भी वक्त आग लग सकती है, एक आदमी की वजह से लाखों रुपये का नुकसान हो सकता है। हम ऐसी गलतियों पर कड़ी से–कड़ी सजा दे सकते है।

बुद्धन को कड़ी चेतावनी के साथ एक रुपये का दण्ड देने की साहब ने घोषणा कर दी,तभी भीड़ में से किसी ने ऊँचे स्वर मे कहा, साहब आग तो सभी की बीड़ी–सिगरेट से लग सकती है।

सैकड़ों विस्मित आँखें उस ओर उठ गईं जिधर से आवाज आई थी। साहब कुछ कहें इससे पहले वही व्यक्ति फिर बोला, अफसर साहबान तो सारे कारखाने में मुँह में सिगरेट दाबे घूमते रहते हैं।

भीड़ में एक भयानक खामोशी छा गयी। इस मुहँजोर नये आदमी की उद्दण्डता देखकर साहब का मुँह तमतमा उठा। बड़ी कठिनाई से उनके मुँहसे निकला, ठीक है हम देखेंगे' और जाते–जाते उन्होंने तीखी दृष्टि से उसकी ओर देखा जैसे उसकी मुखाकृति को अच्छी तरह पहचान लेने का प्रयत्न कर रहे हों।

चीफ साहब अपने चैम्बर की ओर चल दिये। भीड़ छँट गयी। हवा में चारों ओर कानाफूसी के विचित्र स्वर फैलने लगे। बुद्धन ओर से हटकर लोगों का ध्यान अब उसकी ओर केन्द्रित हो गया था।

उस दिन छुट्टी के बाद लौटते हुए दो–तीन- नौजवान उसके साथ हो लिये। प्रत्यक्ष रूप में किसी ने भी बीड़ी वाली घटना को लेकर उसकी सराहना नहीं की, यद्यपि उनके व्यवहार और उनकी बातों से उसे लगा जैसे उन्हें यह अच्छा लगा हो और वे उसके अधिक निकट आना चाहते हों। कटघरे से निकलकर एक नौजवान बुदबुदाया, सालों का शक रहता है कि हम टांगों के साथ कुछ बाँधे ले जा रहे हैं, इसीलिए अब यह उछल–कूद का खेल कराने लगे हैं।'

'इनका बस चल तो ये गेट तक हमारी नागा साधुओं की –सी बारात बनाकर भेजा करें, दूसरे ने उसकी बात का समर्थन किया।

'खीर खाये बामणी, फाँसी चढ़े शेख, नहीं देखा तो यहाँ

शेष पृष्ठ आठ पर

(पृष्ठ एक से आगे)

तख्त उछाले जायेंगे.....

वंचित है। यहाँ रोजगार के और कोई साधन भी नहीं है। लेकिन सरकारी कागजों में पिछले नौ वर्षों के दौरान सिंचाई और परिवहन व्यवस्था दुरुस्त करने के नाम पर सात करोड़ रुपये खर्च भी हो चुके हैं। सरकारी दावों के अनुसार यहां गरीबों के लिए कोटे की दुकानों से अनाज का समुचित वितरण भी हो रहा है। लेकिन कहाँ है विकास, किसको मिला अनाज ? सरकारी विकास योजनाओं और गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों की असलियत से परिचित कोई भी आदमी यह आसानी से समझ सकता है कि इन योजनाओं –कार्यक्रमों से नौकरशाहों– नेताओं का बैंक बैलेंस बढ़ रहा है और कागजों पर गरीबी का उन्मूलन हो रहा है और अब भुखमरी से भी।

काशीपुर में मौत की इन घटनाओं के प्रकाश में आने के बाद संसद की नपुंसकता और राज्य व केन्द्र की सरकारों की संवेदनहीनता का एक और घिनौना नजारा सामने आया। सरकार यह दावा कर रही है कि मौतें भूख से नहीं जहरीला भोजन खाने से हुई हैं। संसद–विधानसभा में बहस इस बात पर हो रही है कि भुखमरी से मौतें जब अन्य (गैर भाजपा) राज्यों में भी हो रही है तो फिर विपक्ष उड़ीसा की भुखमरी पर ही इतना हो–हल्ला क्यों मचा रहा है। ऐसे में लोग सब्र भला क्यों करें जब उनके भाई मर रहे हों और जनप्रतिनिधि संसद–विधान सभाओं में बैठकर जूतम पैजार कर रहे हों। उधर स्थानीय जिलाधिकारी महोदय मृतकों द्वारा 32 किलो चावल अवैध रुप से उठाने और "विषैले कुकरमुत्ते" खाने से मौत होने का अन्तरविरोधी बयान देते हुए बेहयाई के साथ कहते हैं कि "आप गरीबों को हमेशा पालते –पोसते नहीं रह सकते।"

राज्य सरकार का दावा है कि भूख से कोई मौत नहीं हुई हैं और काशीपुर ब्लाक के सभी लोगों ने जुलाई तक सार्वजनिक वितरण व्यवस्था (पी.डी.एस.) से अपने हिस्से का चावल ले लिया था। जबकि सच यह है कि मृतकों के घर अन्न का एक दाना भी नहीं था। अपनी जिन्दगी की गाड़ी खींचने के अन्तिम प्रयास के तौर पर उन्होंने आम की गुठली का आटा खाया था। यह गुठली का वही आटा था जिसे पासमुंडा गांव के लोगों ने मुख्यमंत्री को चखाने का प्रयास किया और ठीकरी गांव के लोगों ने उनके काफिले पर फेंका था। जहाँ तक सार्वजनिक वितरण प्रणाली का प्रश्न है, तो बुर्जुआ मीडिया की रिपोर्टों के ही अनुसार काशीपुर ब्लाक में यह व्यवस्था काम ही नहीं कर रही है और गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले परिवार धनाभाव के कारण अपने हिस्से का चावल लेने की स्थिति में ही नहीं है।

इस क्षेत्र में 1988 में जब पहली बार भुखमरी की खबरें आयीं थी, तबसे लेकर अब तक केन्द्र व राज्य में कई सरकारें बनी और बदलीं, सबने इसके खात्मे के लिए घड़ियाली आंसू बहाये, राहत की घोषणाएं भी हुई, लेकिन गरीबी रेखा से नीचे के लोगों की संख्या और बढ़ती ही गयी। सरकारी आंकड़ों के अनुसार जिस काशीपुर में 1992 में 15,472 लोग गरीबी की रेखा से नीचे गुजर–बसर कर रहे थे, 1997 में उनकी संख्या बढ़कर 24,582 लोग हो गयी थी। दूसरी तरफ यहां के स्थानीय आदिवासियों की जमीनों का भारी हिस्सा चन्द उन धनपतियों के हाथों में सिमट गया, जिन्होंने राहत योजनाओं आदि से पैसे बटोरे थे। यही नहीं, सरकारी यहायता का एक भारी हिस्सा 'बागवानी' में अथवा 'जागरूकता संगोष्ठियों' में पानी की तरह बह गया।

जहां तक सार्वजनिक वितरण (राशन–कोटा) का प्रश्न है, तो अमूमन इसका लाभ गरीब आबादी तक पहुंच ही नहीं पाता। एक तो इस आबादी के लिए राशन कार्ड बनवाना ही टेढ़ी खीर होता है, दूसरे जिनके कार्ड किसी तरह बन भी जाएं तो उनके इतना पैसा ही नहीं होता कि वे एकमुश्त अनाज उठा सकें। कुछ लोगों के पास तो अनाज रखने तक की समस्या है।

आज भुखमरी की यह हालत महज उड़ीसा में ही नहीं है। देश के अन्य हिस्सों –राजस्थान, मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़, गुजरात, आंध्र प्रदेश, बिहार, झारखण्ड, प0 बंगाल, उत्तर प्रदेश आदि राज्यों में भी यह मौजूद है। बिडम्बना यह है कि देश में अनाज उत्पादन लगातार बढ़ता जा रहा है, भारतीय खाद्य निगम के गोदाम अनाज से भरे पड़े हैं, अधिकता की वजह से गेहूँ–चावल का स्टाक तिरपाल से ढक कर खुले आकाश के नीचे पड़ा हुआ है। हर साल हजारों टन अनाज सड़ जाने या चूहों का भोजन बनने की खबरें आती रहती हैं। यह इस मुनाफाखोर व्यवस्था की ही देन है कि जिस वक्त भारतीय खाद्य निगम के गोदामों में छह करोड़ टन से ज्यादा गेहूँ– चावल का स्टाक पड़ा हुआ है और एक करोड़ चालीस लाख टन चावल चन्द महीनों में ही (खरीफ फसल से) आने वाला है, उस वक्त कुछ हिस्सो में लोग खाये बिना मर रहे हैं। पूंजीवादी व्यवस्था का यह आम नियम है कि आम जीवनोपयोगी सामान भी समुद्र के हवाले भले ही हो जाएं, लेकिन मुफ्त में नहीं बाटेंगे। इस अमानवीय तंत्र के लिये यह कोई नयी बात नहीं है।

इस त्रासदपूर्ण स्थिति पर 'पीपुल्स यूनियन फॉर सिविल लिबर्टीज' (पी यू सी एल) ने उच्चतम न्यायालय में जब एक जनहित याचिका दायर किया कि अदालत तय करे कि वह जीवन के मौलिक अधिकार को भोजन पाने के अधिकार से जोड़ती है या नहीं (उसके अनुसार लगभग 20 करोड़ से ज्यादा लोग इस देश में दीर्घकालिक भुखमरी के शिकार हैं) तो मजबूरन न्यायालय को भी यह कहना पड़ा कि किसी भी व्यक्ति को सिर्फ इस आधार पर भोजन से वंचित नहीं किया जा सकता कि उसके पास खरीदने के लिए पैसे नहीं हैं।

हास्यास्पद और घृणास्पद स्थिति यह है कि उच्चतम न्यायालय की दो सदस्यीय खण्डपीठ ने सभी राज्यों से दो सप्ताह के भीतर गरीबों की पहचान का काम पूरा कर लेने का आदेश दिया। शासन तंत्र की संवेदनशीलता देखिये कि केन्द्र सरकार ने भी सभी राज्यों के लिए खाद्यान्नों का अभाव झेल रहे गरीबों का पता लगाने और उन्हें सार्वजनिक वितरण प्रणाली के तहत खाद्यान्न उपलब्ध कराना अनिवार्य करने का आदेश पारित कर दिया है। यह आदेश पारित करते हुए केन्द्रीय खाद्य एवं सार्वजनिक वितरण मंत्री श्री शांता कुमार ने घड़ियाली आंसू बहाते हुए कहा कि 'केन्द्र में खाद्य एवं सार्वजनिक वितरण मंत्री का पद संभालने पर जब मैंने यह रिपोर्ट देखी कि देश में 36 करोड़ लोग गरीब हैं (मंत्रीजी ! सच यह है कि इस वक्त 40 करोड़ गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन कर रहे हैं। बहरहाल) और उनमें 5 करोड़ से अधिक भरपेट खाये बगैर सोने को मजबूर है, सच मानिए, उस दिन से मुझे अपना खाना अच्छा नहीं लग रहा हैं' (इन 21 मौतों पर कितने वक्त उपवास किया था मंत्री जी आपने ?)।

बहरहाल, न्यायालय के आदेशानुसार दो हफ्ते में और प्रधानमंत्री के आदेशानुसार तीन माह में गरीबों और अति गरीबों की पहचान की कवायद शुरु हो गयी है। अभी कुछ माह पूर्व 'अन्त्योदय अन्न योजना' के तहत भी अति गरीबों की सूची बनी थी फिर भी लोग भुखमरी के शिकार हो गये।इससे भी पहले योजना आयोग ने व राष्ट्रीय सैंपल सर्वेक्षण आयोग ने भी गरीब व अति गरीब आबादी की पहचान की थी लेकिन नतीजा सामने है। आगे भी गरीबों की "पहचान पूरी" हो जायेगी, उन्हें, "लाभ" भी पहुँच जाएगा। लेकिन स्थिति और ज्यादा भयावह रुप में सामने आयेगी और फिर क्या यह अपने आप में एक अश्लील चुटकुला नहीं है कि लम्बी तैयारी के बाद एक दशक में होने वाले जनगणना में "गरीबों की छंटनी " तो नहीं हो पाती है लेकिन दो हफ्ते में उनकी "पहचान " हो जायेगी।

54 वर्षों के आजाद भारत का यह एक जीता–जागता उदाहरण है। यह अन्धी पूंजीवादी लूट का ही नतीजा है कि जहां एक तरफ ऊपर की 15–20 फीसदी आबादी ज्यादा से ज्यादा अमीर होती गयी है वहीं नीचे की 40 फीसदी आबादी गरीबी रेखा से भी नीचे गुजर –बसर कर रही है, भुखमरी का शिकार हो मर रही है, जिसके बच्चे कुपोषण से मर जाते हैं। काशीपुर जैसी तो चन्द एक वे घटनाएं है जो अखबारों की सुर्खियां बन जाती है। लेकिन देश के तमाम अन्य राज्यों–बिहार, झारखण्ड, तमिलनाडु, आंध्र प्रदेश, महाराष्ट्र, पश्चिम बंगाल और पूर्वोत्तर राज्यों में ही नहीं वरन राजधानी दिल्ली तक की झुग्गी–झोपड़ियों में करोड़ों लोग ऐसी ही अमानवीय जिन्दगी जी रहे है। गरीबी–बेकारी से तंग आकर परिवार समेत आत्महत्याएं कर लेने की खबरें अब अपवाद नहीं रह गयी हैं।

पिछले एक दशक के दौरान, जब से उदारीकरण–निजीकरण का दौर शुरू हुआ है, लोगों की जिन्दगी की पीड़ा–व्यथा, बेबसी अभूतपूर्व मुकाम तक पहुंच गयी है। लेकिन, देश को शासक वर्ग अपनी राह पर आगे ही आगे बढ़ता जाने को उतावला है। अभी पिछले दिनों प्रधानमंत्री महोदय ने तो यहां तक कह दिया है कि देश के 'विकास' के लिए नौकरियों में और ज्यादा छँटनी करनी पड़ेगी और 'बीमार' उद्योगो में तालाबन्दी का सिलसिला तेज करना पड़ेगा। यह भी हो सकता है इस राह पर आगे बढ़ते हुए देश के 'विकास' के लिए प्रधानमंत्री महोदय पूर देश पर ही ताला लटकाने की सोचने लगें। लेकिन शायद इसकी नौबत नहीं आयेगी। अभी तो जनता ने सिर्फ आम की गुठलियां ही फेंकी हैं, कीचड़ ही उछाला है। लेकिन जल्दी ही लोग यह भी समझ जायेंगे कि गन्दगी में धसे लोगों पर कीचड़ उछालने से कुछ नहीं होने वाला। तब वह समय आयेगा 'जब तख्त उछाले जायेंगे, जब ताज गिराये जाएंगे।"

(पृष्ठ एक से आगे)

लोगों का गुस्सा बढ़ रहा है..

यदि काशीपुर की घटना से भी हमारे देश के शासकों की आँख न खुली हो तो उन्हें हाइती देश के उदाहरण की हम याद दिलाना चाहेंगे। ज्यादा पुरानी बात नहीं है। सिर्फ एक दशक पुरानी। जिन नीतियों पर आज हमारे शासक चल रहे हैं उन्हीं नीतियों को उस समय अमेरिकी साम्राज्यवाद का कठपुतली शासक दुवालियर हाइती में लागू कर रहा था। राशन की दुकानें बन्द हो गयी थीं, बाजार में अटे–पड़े अनाज और दूसरे सामान गरीब फटेहाल लोगों को मुंह चिढ़ा रहे थे। रेल–बस के किराये में इतनी बढ़ोत्तरी हो गयी थी कि आम मेहनतकश लोग 20–30 किमी0 पैदल चलकर अपने काम पर पहुंचते थे। इन्हीं हालात में लोगों की, नफरत और गुस्से का लावा फूटकर सड़कों पर यह निकला। हुआ यह कि सड़कों पर फर्राटा दौड़ती चमाचम मोटरगाड़ियों में से अमीरजादों को बाहर खींच–खींचकर लोगों ने पीटना शुरु किया, अनके गले में जलते हुए टायर डाल दिये गये। ये लोग अपराधी नहीं थे। सीधे–सादे कानून से डरने वाले लोग थे। जिन्दगी की बदहाली ने उसे जज्ब करने की क्षमता छीन ली थी, मौत से बेखौफ कर दिया था।

इन्ही हालात में जनता के नायक बनकर उभरे ज्यां बर्ट्रेंड अरिस्टाइड ने लोगों का आह्वान किया था कि जिनके पेट खाली हों उन्हें उधर बढ़ना चाहिए जिधर दस्तरखान सजें हो; जिनके पास रहने का ठौर –ठिकाना न हो उन्हें महलों की नजर उठाना चाहिए। भद्र जनों की नैतिकता इस आह्वान को अराजकतावाद का नाम दे सकती है लेकिन भूखे–नंगे लोगों से संयम और नैतिकता का पालन करने करी उम्मीद रखना क्या कोरा आदर्श न होगा।

उन घटनाओं को हुए भी अधिक समय नहीं गुजरा है जब विश्व बैंक–मुद्राकोष की संरचनात्मक समायोजन नीतियों की एक और तो सरकार और उसके भाड़े के कलम घसीट खुलेआम कह रहे है कि सरकार का काम स्कूल–रेल–बस–अस्पताल चलाना नहीं है, इसलिए इन सबका निजीकरण कर दिया जाना चाहिए। दूसरी तरफ सरकार दोनों हाथों से आम लोगों से कर वसूलने में लगी हुई है।

(अगले अंक में जारी)

(पृष्ठ दो से आगे)

विनाश मेहनती जनता का...

के 10 देश 66 प्रतिशत सब्सिडी दे रहे हैं। इसी प्रकार भारत में 1990 में कर राजस्व सकल घरेलू उत्पाद के 9.9 प्रतिशत के बराबर था जो 1998 में 8.6 प्रतिशत रह गया। इस दौरान यह अमेरिका में 18 प्रतिशत से बढ़कर 20.5 प्रतिशत, ब्रिटेन में 33.3 प्रतिशत से बढ़कर 36.3 प्रतिशत, फ्रांस में 37.6 से 39.2 प्रतिशत हो गया।

पिछले एक दशक में उदारीकरण की नीतियों के तहत एक ओर जनता पर करों का बोझ तमाम तिकड़मों से बढ़ाए जा रहे हैं, दूसरी ओर मीडिया में आक्रामक और झूठे प्रचार से ऐसा माहौल बनाया जा रहा है मानो देश की आर्थिक दिक्कतों की वजह शिक्षा–स्वास्थ्य, कृषि आदि में दी जाने वाली सब्सिडी ही हो। सच्चाई यह है कि जनता के इन बुनियादी सहूलियतों में सब्सिडी की कटौती करके, देशी–विदेशी पूंजीवादी लुटेरों को तरह–तरह की रियायतें और छूटें परोसी जा रही हैं।

(पृष्ठ चार से आगे)

सुपर बाजार कंगाल....

मुनाफाखोरों के हाथों बिक चुकी दलाल है और न्याय पलिका न्याय का ढोंग रचती है। यह समझ अगी और सीझेगी, और वे यह भी समझ जायेंगे कि इस समूचे निजाम को ही फ्लट देने के अलावा कोई और रास्ता नहीं है।

लेनिन के साथ दस महीने

(पिछले अंक से आगे)

7. जनता के सम्मुख लेनिन

लेनिन द्वन्द्वात्मक पद्धति और वाद–विवाद के आचार्य और बहस में अत्यधिक अव्यय रहनेवाले व्यक्ति थे। बहस में उनका सर्वोत्कृष्ट रूप प्रकट होता था। ओल्मिन (एक वृत्तकार जिन्होंने सोवियत संघ के बारे में पुस्तकें लिखीं) ने लिखा है, लेनिन विरोधी को उत्तर नहीं देते, बल्कि उसका बखिया उधेड़कर रख देते हैं – उसका सही रूप प्रकट कर देते हैं। उनकी प्रज्ञा उस्तुरे की धार की तरह तेज है। उनका मस्तिष्क विलक्षण कुशाग्रता के साथ काम करता है। विपक्षी के प्रत्येक दोष की ओर उनका ध्यान जाता है। जो प्रमेय उन्हें मान्य नहीं होते, उनके प्रति अपनी असहमति प्रकट करते हैं और ऐसे प्रमेयों के उपहासास्पद नतीजों को निकालकर उनके बेतुकेपन को प्रकट कर देते है। इसके साथ ही वे व्यंग्यपूर्ण चोटें भी करते हैं, अपने विरोधी की हंसी भी उड़ाते है, उसे फटकारते भी हैं। वे आपको यह अनुभव कराते हैं कि उनके तर्कों से पराजित उनका विरोधी अज्ञानी, मूर्ख प्रगल्भ एवं तुच्छ व्यक्ति है। आप उनकी तर्कशक्ति से प्रभावित हो उनकी ओर झुक जाते हैं। आप उनके बौद्धिक भावावेग से अभिभूत हो जाते हैं।"

लेनिन कभी–कभी तर्क पर तर्क प्रस्तुत करते समय बीच–बीच में हास्य की फुलझड़ी छोड़कर अथवा चुभनेवाले मुहंतोड़ उत्तर देकर गंभीरता को भंग कर विश्राम के क्षण प्रस्तुत करते है जैसे "कामरेड कामकोव की पूछताछ से मुझे उस उक्ति की याद आती है –एक मूर्ख व्यक्ति इतने अधिक प्रश्न पूछ सकता है, जिनके उत्तर दस बुद्धिमान भी नहीं दे सकते।" दूसरा उदाहरण लीजिए। बोल्शेविक पत्रकार राडेक ने जब लेनिन पर बरसते हुए कहा, "यदि पेत्रोग्राद में पांच सौ बहादुर व्यक्ति होते, तो हम आपको जेल में डाल देते,"लेनिन ने शान्तिपूर्वक उत्तर दिया, "कुछ साथी सचमुच जेल भेजे जा सकते है, परन्तु यदि तुम संभावनाओं पर गौर करो, तो तुम्हें यही अधिक सम्भव प्रतीत होगा कि तुम नहीं, बल्कि मै तुम्हें जेल में भेज सकूंगा।" कभी–कभी वे सुविदित घरेलू कथनों द्वारा नई व्यवस्था पर प्रकाश डालते : जमींदार के जंगल में बुढ़िया किसान–महिला जलाने की लकड़ी जमा कर रही है और नये शासन का सैनिक उत्पीड़क की जगह अब उसका रक्षक बना हुआ है।

एल्बर्ट रीस विलियम्स उन पांच अमेरिकी जनों में से एक थे जो अक्टूबर क्रांति के तूफानी दिनों के साक्षी थे। वे 1917 के बसंत में रुस पहुंचे। उस समय से लेकर अक्टूबर क्रांति तक, वे तूफान के साक्षी ही नहीं बल्कि भागीदार भी रहे। इस दौरान उन्होंने व्यापक जनता के शौर्य एवं सृजनशीलता के साथ ही बोल्शेविक योद्धाओं के जीवन को भी निकट से देखा। लम्बे समय तक वे लेनिन के साथ-साथ रहे। क्रान्ति के बाद जुलाई, 1918 तक उन्होने दुनिया भर की प्रतिक्रियावादी ताकतों से जूझती पहली सर्वाहारा सत्ता के जीवन-संघर्ष को निकट से देखा।

स्वदेश लौटकर रीस विलियम्स ने दो किताबें लिखीं - 'लेनिनः व्यक्ति और उनके कार्य' तथा 'रुसी क्रान्ति के दौरान'। ये दोनो पुस्तकें एक जिल्द में 'अक्टूबर क्रांति और लेनिन' नाम से राहुल फाउण्डेशन, लखनऊ से प्रकाशित हो चुकी हैं।

हम रीस विलियम्स की पूर्वोक्त पुस्तक के अंश अप्रैल 2001 अंक से धारावाहिक रूप में बिगुल के पाठकों के लिये प्रस्तुत कर रहे हैं।

-संपादक

ऐसा प्रतीत होता कि दुःख –मुसीबतों और घटनाओं के दबाव ने लेनिन के अन्तस्तल की ज्वाला और जोशीले आत्मसंयम की सामान्य सीमा को भस्म कर डाला था। एक नये पर्यवेक्षक ने कहा कि एक बड़ी सभा में लेनिन ने अपना भाषण कुछ रुक–रुककर बोझिल वाक्यों से शुरू किया, परन्तु जब प्रवाह में आ गये, तो अधिक स्पष्टता के साथ उन्होने अपनी बातें कहीं। बिना अधिक बाहरी प्रयास के वे धाराप्रवाह एवं ओजपूर्ण ढंग से, मगर अधिकाधिक आन्तरिक उद्वेलन से भाषण करने लगे, जो बहुत ही प्रभावकारी था। "एक प्रकार की नियंत्रित मनोवेदना उनकी आत्मा पर छा गई थी। वे भाषण के दौरान अनेक प्रकार के अंगविक्षेप व भावभंगिमा का प्रयोग करते और कुछ कदम आगे–पीछे होते रहते थे। उनके ललाट पर बहुत गहरे और बेतरतीब बल पड़ जाते, जो प्रगाढ चिन्तन और प्रायः यातानाप्रद बौद्धिक श्रम के परिचायक होते।" लेनिन का उद्देश्य लोगों की भावनाओं की जगह विवेक को जगाना था। मगर दर्शकों की प्रतिक्रिया से लेनिन की शुद्ध बौद्धिकता की भावात्मक शक्ति का परिचय भी प्राप्त होता था।

मैने केवल एक बार लेनिन के भाषण में इस जोश का अभाव पाया। यह जनवरी में, मिखाइलोल्स्की आश्वारोहण–पाठशाला के विशाल भवन में हुआ, जब नई लाल सेना की प्रथम टुकड़ी मोर्चे की ओर कूच कर रही थी। जलती हुई मशालों से विशाल भवन में रोशनी फली हुई थी और बख्तरबन्द गाड़ियों की पंक्तिया विचित्र आदिकालिक दानवों के भीमाकार समूह की भांति दिखाई पड़ रही थी। विशाल मैदान में बख्तरबन्द गाड़ियों के आसपास कुछ ही समय पहले भर्ती हुए नये सैनिकों की भीड़ जमा थी। वे बहुत ही कम शस्त्रों से लैस थे, परन्तु सुदृढ़ क्रान्तिकारी जोश से भरे हुए थे, अपने को गर्म रखने के लिए वे नाच रहे थे, पैरों को पटक रहे थे और प्रसन्नता का वातावरण बनाये रखने के लिये क्रांतिकारी और लोकगीत गा रहे थे।

ऊंची आवाज मे लेनिन के आगमन की सूचना दी गई। वे एक बड़ी बख्तरबन्द गाड़ी पर सवार होकर भाषण करने लगे। घिरते हुए अंधेरे में भीड़ ने बड़े ध्यान से उनका भाषण सुना। मगर उनके शब्दों ने उनमें जोश की ज्वाला नहीं प्रज्वलित की। भाषण की समाप्ति पर तालियां बजाई गईं, किन्तु उनमें परस्परागत प्रशंसा की गर्मजोशी नहीं थी। उस दिन उनका भाषण मोर्चे पर प्राण न्योछावर करने के लिए जाने वाले सैनिकों की मनोभावना को ध्यान में रखते हुए बहुत ढीला था। वही सुने–सुनाये विचार और मामूली अभिव्यक्तियां थीं। कारण स्पष्ट था– थका देनेवाले अत्यधिक कार्य एवं बहुत–सी बातों में उलझा हुआ दिल–दिमाग। मगर तथ्य यही है कि उनका व्याख्यान अवसर के उपयुक्त नहीं था। लेनिन ने एक महत्वपूर्ण अवसर पर महत्वशून्य भाषण दिया। और श्रमिकों ने इसे महसूस किया। रूसी सर्वहारा वर्ग के लोग अन्ध वीर–पूजक नहीं है। कोई भी अपने पुराने कारनामों और प्रतिष्ठा के आधार पर बहुत दिनों तक अपना काम नहीं चला सकता था, जैसा कि क्रान्ति के अनुभवी बड़े नेताओं को इस तथ्य का ज्ञान हो गया था। यदि इस समय कोई सेनानी के समान आचरण नहीं करता था, तो नेता की भांति उसके सम्मान में जय–जयकार भी नहीं होता था।

जब लेनिन भाषण देकर बख्तरबन्द गाड़ी से नीचे उतरे, तो पोद्वोइस्की ने सूचित किया, "अब एक अमरीकी कामरेड आपके सम्मुख कुछ कहेंगे।" लोगों ने इधर कान लगाया और मैं उस बड़ी गाड़ी पर चढ़ गया।

लेनिन ने कहा, "ओह ! बहुत अच्छी बात है। आप अंग्रेजी में भाषण देंगे। मुझे दूभाषिए का काम करने का मौका दीजिए।" बेतुकी अन्तःप्रेरणा की झोंक में मैने उत्तर दिया," नहीं, मै रूसी भाषा में ही बोलूंगा।"

लेनिन की आंखें चमक उठीं, मानो उन्हें मनोरंजन की प्रत्याशा हुई। ऐसा होने में बहुत देर भी नही लगी। पहले से रटे–रटाए वाक्यों को समाप्त कर लेने के बाद, जिनका इस्तेमाल मैं सदा किया करता था, मै झिझका और फिर चुप हो गया। मैने रूसी भाषा में अपना भाषण आगे जारी रखने में कठिनाई महसूस की। रूसी भाषा के प्रयोग में विदेशी चाहे कितनी भी भूलें क्यों न करें, रूसी लोग बहुत शालीनता और उदारता से पेश आते हैं। यदि वे नौसिखिये के बोलने की क्षमता को नहीं, तो उसके प्रयास को जरूर पसन्द करते हैं। इसलिए मेरे भाषण में बार–बार देर तक तालियां बजती रहीं और इससे हर बार मुझे अधिक शब्दों को सोच–विचार कर जोड़ने का अवसर मिल जाता, जिससे मै कुछ देर और भाषण जारी रखता। मै उनसे कहना चाहता था कि यदि कोई गंभीर संकट पैदा हो गया, तो लाल सेना में भर्ती होने में मुझे भी प्रसन्नता होगी। इसी सिलसिले में एक शब्द को सोचने के लिए मै रुका। लेनिन ने मेरी ओर देखते हुए पूछा, "आप कौन–सा शब्द चाहते है? " मैने "भर्ती" के लिए रूसी भाषा का शब्द पूछा और उन्होंने तत्काल मुझे वह शब्द बता दिया।

उसके बाद जैसे ही मेरे भाषण की गाड़ी अटकती लेनिन झटपट मुझे शब्द बता देते और मै इन शब्दों को अमरीकी उच्चारण के साथ तोड़–मरोड़कर श्रोताओं तक पहुँचा देता। इससे और इस तथ्य से भी कि अन्तर्राष्ट्रीय भाईचारे के मूर्त प्रतीक के रूप में मैं वहां खड़ा था, जिसके बारे में उन्होंने बहुत कुछ सुन रखा था, जोरों के ठहाके लगते और तालियां गूंज उठती। इसमें लेनिन भी दिल से हिस्सा लेते।

उन्होंने कहा,"खैर, रूसी भाषा में आपकी यह शुरूआत ही है। मगर आपको इसे सीखने के लिए डटे रहना चाहिए।" इसके बाद बेस्सी बिट्टी (एक अमेरिकी महिला पत्रकार) की ओर देखते हुए उन्होंने कहा, "और आपको भी रूसी भाषा सीखनी चाहिए। अखबार में पत्राचार द्वारा रूसी भाषा सीखने का विज्ञापन प्रकाशित करा‌इये। तब केवल रूसी भाषा पढ़िये, लिखिए और रूसी में ही बातचीत कीजिए।" फिर मजाक में उन्होंने यह भी कहा,"अमरीकियों से बातचीत न कीजिये–इससे तो वैसे भी आपको कोई लाभ नहीं होगा। अगली बार जब मेरी आपसे भेंट होगी, तो मै आपकी परीक्षा लूंगा।"

(क्रमशः)

पंजीयन संख्या - 71980/99 डाक पंजीयन संख्या - LW-NP-349-2000

लफ्फाज शिरोमणि, लप्पेबाज केसरी और बेहया सम्राट

दिल्ली। पिछले तीन साल के शासन काल में राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन सरकार के प्रधानमंत्री के रूप में अटल बिहारी वाजपेयी ने जिस तरह लप्पेबाजी, लफ्फाजी और बेहयाई के एक से बढ़कर एक कीर्तिमान कायम किये है, उसके आधार पर यदि इस शख्स को लफ्फाज शिरोमणि, लप्पेबाज केसरी और बेहया सम्राट की उपाधि से विभूषित कर दिया जाये तो यह उसकी योग्यता का सही सम्मान माना जायेगा। लफ्फाजी–लप्पेबाजी–बेहयाई का सबसे ताजा कीर्तिमान प्रधानमंत्री महोदय ने पिछले एक सितम्बर को कायम किया। राष्ट्रीय विकास परिषद की 49 वीं बैठक को सम्बोधित करते हुए उन्होंने फरमाया कि श्रम सुधार श्रमिक विरोधी नहीं बल्कि श्रमिक हितैषी हैं। इनसे रोजगार के नये अवसर पैदा होंगे औरं विकास दर बढ़ेगी।

इस बैठक में आँख मुलमलाते हुए चिरपरिचत आलंकारिक भाषा और उबाऊ–झेलाऊ शैली में प्रधानमंत्री महोदय ने जो उद्घाटन भाषण दिया उसका निचोड़ यही था कि मजदूरों को अब तक हासिल जनतांत्रिक अधिकारों को सीमित कर देने और कारखाना–मालिकों को छंटनी –तालाबंदी का मनमाना अधिकार दे देने से नये रोजगार पैदा होंगे, विकास दर बढ़ेगी। प्रधानमंत्री महोदय ने जितने विश्वास के साथ अपने भाषण में इस चमत्कार के घटित होने की सम्भावना व्यक्त की उतने ही विश्वास के साथ यह भी कहा कि इस बारे में हम श्रम संघों में अपने मित्रों को समझा सकते हैं।

आत्मविश्वास से भरे पूरे प्रधानमंत्री के इस भाषण के बाद भी अगर उनकी सरकार के पुराने विश्वसनीय सहयोगी जार्ज फर्नांडीज अपना गुस्सा मोंटेक सिंह अहलूवालिया पर उतार रहे हैं तो विश्वबैंक के इस वफादार नौकरशाह पर न जाने क्यों तरस आ रहा है। बेचारे अहलूवालिया ने भला ऐसा क्या गुनाह किया है। जो जार्ज उनको लपेट रहें हैं। प्रधानमंत्री ने ही रोजगार के सृजन के लिए एक टास्क फोर्स बनाकर उन्हें उसके अध्यक्ष की कुर्सी पर बिठाया था। अब अहलूवालिया ने अपनी रिपोर्ट में रोजगार बढ़ाने के उपाय के बजाय रोजगार घटाने की तरकीब सुझा दी है तो इसमें उनका कोई कसूर नहीं है। अहलूवालिया ने तो वही सिफारिश दी है जैसी देशी–विदेशी पूंजी के चौधरी चाहते थे और जैसी खुद प्रधानमंत्री महोदय की सोच है। आप प्रधानमंत्री महोदय का यह भाषण और बेचारे अहलूवालिया की रिपोर्ट मिला लीजिए, दोनों में निहित नीतिगत सोच ही नहीं भाषा भी लगभग एक–सी है। फर्क सिर्फ उतना ही है जितना एक राजनीतिज्ञ और नौकरशाह की भाषा में हो सकता है। लेकिन जार्ज तो गुस्सा बेचारे निरीह नौकरशाह पर ही प्रकट करेंगे, क्योंकि यह गुस्सा भावनाओं का स्वाभविक विस्फोट तो था नहीं यह तो तहलका डॉट कॉम के अनैतिक आचरण के बारे में उद्घाटित ताजा सनसनीखेज सच से उत्साहित जार्ज का सुनियेजित और नियंत्रित गुस्सा था जो 'तहलका' की कालिख धों–पोंछ देने की कशमकश में फूट पड़ा था।

बहरहाल, यह तो प्रसंगान्तर था हमारी मूल चर्चा का विषय तो प्रधानमंत्री की लप्पेबाजी, लफ्फाजी और बेहयाई था। उन्होंने लफ्फाजी का पहला नमूना प्रधानमंत्री की शपथ लेते हुए ही पेश कर दया था, जब उन्होने देश की जनता से यह वायदा किया था कि वह हर साल एक करोड़ की दर से अगले दस साल में दस करोड़ रोजगार पैदा करेंगे। इस वायदे के अनुसार पिछले तीन सालों में तीन करोड़ रोजगार पैदा हो जाने चाहिए थे। लेकिन उनकी जीतोड़ कोशिशों के बावजूद अर्थव्यवस्था हांफ रही है, विकास दर औंधे मुंह पड़ी है और रोजगार बढ़ने के बजाय घटता ही जा रहा है। लेकिन प्रधानमंत्री के चेहरे पर शर्म की कोई रेखा तो दूर झेंपने का भाव भी नहीं पैदा हो रहा है। उनका आत्मविश्वास अडिग है और इच्दाशक्ति अटल। सो, वह अब भी दहाड़ रहे हैं और श्रम सुधार के मंत्र से रोजगार पैदा कर देने का चमत्कार दिखाने पर उतारु है। उन्हें पूरी उम्मीद है कि यह चमत्कार होकर रहेगा। छंटनी –तालाबन्दी और "श्रम सुधारों" के दूसरे उपायों से इतना अधिक रोजगार पैदा हो जायेगा कि पिछले तीन सालों की भी भरपाई हो जायेगी और वह वादाफरोश कहलाने से बच जायेगें।

प्रधानमंत्री महोदय का आत्मविश्वास अब भी इतना हिलोरें ले रहा है कि वह दसवीं पंचवर्षीय योजना के लक्ष्य के अनुरूप विकास दर मौजूदा 5 प्रतिशत से बढ़ाकर दस प्रतिशत कर देने के लिए हर सम्भव "प्रभावी और कड़े कदम" उठाने में जरा सी भी कोताही अब बर्दाश्त नहीं करेंगे। वह "जनता की उत्पादक ऊर्जा को बाधित करने वाली बेड़ियां खोलकर अर्थव्यवस्था को नया आयाम "देने के लिए कटिबद्ध हैं। इसके लिए श्रम सुधार" के साथ–साथ कोयला, सिंचाई, जलापूर्ति, शिक्षा स्वास्थ्य सहित सभी बचे–खुचे क्षेत्रों के निजीकरण और सब्सिडियों में कटौती एवं सरकारी कर्मचारियों की संख्या में कटौती करने आदि कदमों को उठाने में अब पल भर भी नहीं हिचकेंगे। पहले ही काफी देर हो चुकी है। उन्होंने राष्ट्रीय विकास परिषद की इस बैठक में जैसे भीष्मप्रतिज्ञा की और मेहनतकश अवाम के खिलाफ निर्णायक युद्धघोष कर दिया है।

बैठक में इन नीतियों को लागू करने का संकल्प व्यक्त करने के बाद में भविष्य के प्रति आशा और उत्साह व्यक्त करने वाली साहित्यिक किस्म की लफ्फाजी भी उन्होंने की। उन्हीं की भाषा में सुनिये : "देश उच्च आशाओं और महान आकांक्षाओं के साथ दसवीं योजना का इन्तजार कर रहा है। नई शताब्दी की यह पहली पंचवर्षीय योजना देश के विकास के इतिहास की एक युगान्तरकारी घटना होगी।" क्या इसके बाद भी अटल जी को लफ्फाज शिरोमणि की उपाधि देत्ते के प्रति आप शंकालु बने रहेंगे।

प्रधानमंत्री महोदय आपकी लफ्फाजी–लप्पेबाजी और बेहयाई के प्रदर्शन के हुनर के बारे में हम कतई शंकालु नहीं हैं। बस चलते–चलाते हम आपसे आत्मविश्वास की प्रेरणा लेकर एक सच्चाई की ओर आपका ध्यान आकर्षित करने से रोक नहीं पा रहें हैं– आपकी नीतियां विकास की ओर नहीं उस निजाम को ही तबाही की और धकेल रही हैं जिसके विकास की कमान आजकल आपके हाथ में हैं।

कुमार गम्भीर

सांसदों के वेतन-भत्तों के सुविधाओं में बढ़ोत्तरी

पूंजीवादी लुटेरों के वफादार कुत्ते भौंकने, काट खाने और चौकीदारी करने की पूरी कीमत वसूल रहे हैं।

(बिगुल प्रतिनिधि)

दिल्ली। देश के कई हिस्सों में भुखमरी फैली, बेकारी के मारे लोग परिवार सहित आत्महत्याएं कर रहे हैं, कई राज्यों में कर्मचारियों–शिक्षकों को वेतन तक नहीं मिल पा रहा है। लेकिन संसद के पिछले सत्र में सांसदों के वेतन–भत्तों और अन्य सुविधाओं में एक बार फिर भारी बढ़ोत्तरी का प्रस्ताव बिना किसी विरोध के पास हो गया। एक भी सांसद प्रस्ताव के विरोध में नहीं खड़ा हुआ। संसद में बैठे वामपंथी बातबहादुर भी चुप रहें।

संसद में पास इस प्रस्ताव के बाद अब हर सांसद को वेतन के रूप में प्रति माह 12000 रुपये मिलेगें जो पहले 4000 था। दैनिक भत्ता अब 400 रुपये से बढ़ाकर 500 रुपये कर दिया गया है। वर्ष में औसतन 210 दिन संसद चलती है, इस तरह साल भर में मिलने वाले भत्ते को जोड़कर हिसाब लगाया जाये तो यह रकम प्रति माह रु0 8500 बैठती है। अब संसदीय क्षेत्र की सेवा के नाम पर भी 8000 रुपये के बजाए 10000 रुपये महीना मिलेगा। कार्यालय भत्ता भी बढ़ गया है। अपना ऑफिस चलाने के लिए अब हर माह 14000 रुपये मिलेंगे, पहले यह 9500 रूपये था। इसके अलावा के0 पी0 सिंह देव समिति की सिफारिश को स्वीकार करते हुए संसदीय क्षेत्र यात्रा भत्ता भी बढ़ा दिया गया है। इस समिति ने अनुमान लगाया है कि एक सांसद अमूमन 150 दिन अपने क्षेत्र में रहता है और 135 किमी0 प्रतिदिन कार या जीप से यात्रा करता होगा। इसी गजब के अनुमान के आधारं पर संसदीय क्षेत्र का यात्रा भत्ता बढ़ा है। लोकसभा के पूर्व महासचिव डा0 सुभाष काश्यप का अनुमान है कि इस वेतनवृद्धि के बाद सत्रों के दौरान सांसदों को 61000 रुपये नकद मिलेंगे। इस नकद राशि पर कोई आयकर भी नहीं देना पड़ता।

हर माह मिलने वाली इस नकद धनराशि के अतिरिक्त हर सांसद को एक कम्प्यूटर ढाई या सवा एकड़ के बंगले, फर्नीचर, कार, एअरकंडिशनर, बिजली, पानी सब मुफ्त। दो फोन भी मुफ्त मिलते है– एक राजधानी में और एक निजी आवास पर। डॉ0 सुभाष काश्यप का ही अनुमान है कि अगर इन सुविधाओं की कीमत पैसे में निकाली जाये तो हर माह हरेक सांसद पर दो लाख रूपये सरकारी खजाने से खर्च होते हैं।

इतना ही नहीं संसद के अधिवेशन या संसदीय समितियों की बैठकों में भाग लेने के लिए आने–जाने पर हवाई जहाज या वातानुकूलित प्रथम श्रेणी रेल किराया उन्हें नहीं देना पड़ता। उन्हें सपरिवार यात्रा पर भी किराये में काफी छूट की सुविधा प्राप्त है। साथ ही प्रत्येक संसद सदस्य प्रति वर्ष 32 हवाई यात्राएं मुफ्त कर सकता है। यह तो हुई सरकारी सुविधाओं और कमाई की बात। शेष दूसरे रास्तों से भी इससे कई गुना अधिक कमाई एक "जनसेवक" कर लेता है ओर अपनी आने वाली पीढ़ियों का भविष्य सुरक्षित कर लेता है।

यह तो हुई सांसदों के व्यक्तिगत खर्चो और "कमाई" की बात। लेकिन संसद–विधानसभा नामक बहस बाजी के जिन अड्डों में हमारे ये "जनसेवक" देश और समाज की समस्याओं पर विचार करते हैं, उनके और सरकार के खर्चे पढ़कर आप अवाक रह जायेंगे। संसद की एक दिन की कार्रवाई चलाने पर लगभग डेढ़ करोड़ रुपये खर्च होते है। इसी तरह देश के राष्ट्रपति पर हर दिन लगभग साढ़े चार लाख रुपये खर्च होते हैं। प्रधानमंत्री कार्यालय पर प्रतिदिन लगभग ढाई लाख रुपये ओर केन्द्रीय मंत्रिमंडल पर दैनिक खर्च लगभग 15 लाख रुपये है।

और आगे बढ़िये, पिछले वर्ष विशिष्ट व्यक्तियों की सुरक्षा पर 61 करोड़ रूपये खर्च हुए। यह सिर्फ एस0पी0जी0 और एन0एस0जी0 सुरक्षा दस्तों का खर्च है। वाहन आदि खर्च अलग से मंत्रिपरिषद की सुरक्षा पर भी पिछले वर्ष लगभग 51 करोड़ रुपये खर्च हुए मंत्रियों की सुरक्षा पर होने वाला यह खर्च सरकार चलाने के कुल खर्च से डेढ़ गुना है। सोचने की बात है कि जनता के चुने हुए प्रतिनिधियों को आखिर खतरा किससे है? कहीं "अपनी" जनता से ही तो नहीं ?

ये सभी खर्च तो सिर्फ "जनसेवकों" और भारतीय जनता के दिखाने के दातों संसद – विधानसभाओं की हिफाजत करने और पालने–पोसने पर होने वाले खर्च हैं। विराट नौकरशाही तंत्र पर, पुलिस विभाग और अर्द्धसैनिक बलों पर तथा फौजी मशीनरी पर सालाना अरबों–खरबों का जो अनुत्पादक खर्च होता है वह अलग से ।

इतने मंहगे "जनंतत्र" का भारी बोझ वे नहीं उठाते जिनके लिए यह जनतंत्र का ढांचा खड़ा है यानी पूंजीपति यह बोझ नहीं उठाते। इन लुटेरों के वफादार कुत्ते, भौंकने, काट खाने और चौकीदारी करने की कीमत उसी जनता से वसूलते हैं। जिसकी हड्डियों से पूंजीपतियों का मुनाफा निचोड़ने का इन्तजाम ये सरकार और संसद–विधानसभाओं में बैठकर करते हैं।

मुद्रक : प्रकाशक और स्वामी डा. दूधनाथ द्वारा 69, बाबा का पुरवा, निशातगंज, लखनऊ से प्रकाशित एवं उन्हीं के द्वारा वाणी ग्राफिक्स, अलीगंज, लखनऊ से मुद्रित। कम्पोजिंग : कम्प्यूटर प्रभाग, राहुल फाउण्डेशन, लखनऊ
संपादक मण्डल : डा. दूधनाथ, मुकुल। सम्पादकीय पता : 69, बाबा का पुरवा, पेपर मिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006, सम्पादकीय उपकार्यालय : जनगण होम्यो सेवासदन, मर्यादपुर, मऊ।